

सन्त प्रवचन-सार

-: लेखक : -
साधू वेश में एक पथिक

सौजन्य से
श्रीमती रामदेवी सूरी
लखनऊ

पुस्तक मिलने का पता
स्वामी पथिक सेवा समिति, नवल किशोर रोड, लखनऊ

नाम संस्करण

मूल्य

12/- मात्र

मुद्रक -

विषय सूची

क्र०	विषय	पृ० संख्या
1	प्रवचन सार	
2	जीवन को सुन्दर बनाने के लिये	
3	पतन के लक्षण	
4	साधक, साधन, साध्य	
5	साधन की शुद्धि	
6	संयम से ही शक्ति	
7	साधक की राह	
8	साधक की पूजा-आराधना	
9	साधक का सात्त्विक भोजन	
10	वर्तमान में ही भविष्य बनता है	
11	अपना अध्ययन	
12	भगवान की कृपा कैसे हो	
13	संग का प्रभाव	
14	उत्कृष्ट योग देने वाले पुण्यवानों के कृत्य	
15	सिद्धि के अनेक प्रकार	
16	साधक की उदारता और विशालता	

विषय सूची

क्र०	विषय	पृ० संख्या
1	प्रवचन सार	
2	जीवन को सुन्दर बनाने के लिये	
3	पतन के लक्षण	
4	साधक, साधन, साध्य	
5	साधन की शुद्धि	
6	संयम से ही शक्ति	
7	साधक की राह	
8	साधक की पूजा-आराधना	
9	साधक का सात्त्विक भोजन	
10	वर्तमान में ही भविष्य बनता है	
11	अपना अध्ययन	
12	भगवान की कृपा कैसे हो	
13	संघ का प्रभाव	
14	उत्कृष्ट योग देने वाले पुण्यवानों के कृत्य	
15	सिद्धि के अनेक प्रकार	
16	साधक की उदारता और विशालता	

संस्त

प्रवचन-सार

आत्म अनुभव ज्ञान की, जो कोई पूछे बात ।
सो गूँगा गुड़ खाइके, कहै कौन मुख स्वाद । ।
कबीर बादल प्रेम का, हम पर बरसा आय ।
अन्तर भीगी आत्मा, हरि भई बनराई । ।
जिहि घट प्रीति व प्रेम रस, पुनि रसना नहिं राम ।
ते नर इस संसार में, उपनि भये बेकाम । ।
अकथ कहानी प्रेम की, कछु कही न जाइ ।
गूँगे केरी सरकरा, खाइ और मुसकाय । ।
ऐसो अद्भुत मत कथो, कथो तो धरो छिपाय ।
वेद कुरान न लिखी, कहँ तो को पतियाय । ।
मरते-मरते जग मुआ, औरस मुआ न कोय ।
दास कबीरा यों मुआ, बहुरि न मरना होय । ।
जब लागि मरने से डरे, तब लागि प्रेमी नाहिं ।
बड़े दूर है प्रेम घर, समाझि लेहु मन माहिं । ।
जिस मरने से जग डरे, मेरो मन आनन्दा ।
कब मरिहौ कब भेटिहौ, पूरन परमानन्दा । ।

- 1- शिक्षण-दिक्षण, समाज-संस्कृति से प्रेम खो जाता है ।
- 2- सत्य तो है ही, असली सवाल तुम्हारे पास आँख का है ।
- 3- प्रेम का अर्थ है अनुभव करने की क्षमता, संवेदनशीलता ।
- 4- जिसने प्रेम को पा लिया, उसने परमात्मा के द्वार की कुँजी पा ली ।
- 5- परमात्मा तो मौजूद है, प्रेम नहीं मिलता लेकिन प्रेम हो तो परमात्मा मिल जाता है ।
- 6- प्रेम जैसे-जैसे खोता जाता है, वैसे-वैसे जीवन पदार्थ से भर जाता है ।
- 7- असुरक्षित होना जीवित होना है । जीवन का सूत्र है असुरक्षा में जीना ।

- 8 - जो भी धन को इकट्ठा करते हैं, वे ही लोग हैं, जिनके जीवन में प्रेम शून्य हो गया है।
- 9 - अहंकार विध्वंसक है।
- 10- जो मालिक बनते हैं, वे प्रेमी नहीं हो पाते।
- 11- जब तुम अपने अहंकार को छोड़ देते हो, तो दूसरे लोग भी तुम्हारे लिए अहंकार रहित हो जाते हैं।
- 12- प्रेम के नाम पर मारते हैं, और आज्ञा के नाम पर अपने अहंकार की घोषणा करते हैं।
- 13- अगर प्रेम है तो अहंकार नहीं होता।
- 14- प्रत्येक व्यक्ति प्रेम के सामने झुकता है, किसी व्यक्ति के सामने नहीं।
- 15- ध्यान रखना छोटा सा भी विचार चलता है तो तुम्हारी शक्ति को नष्ट कर रहा है।
- 16- शरीर के श्रम से चौगुनी शक्ति मन के श्रम में समाप्त होती है।
- 17- विचार और अहंकार के समाप्त होने पर प्रेम की सम्भावना होती है।
- 18- जितना तुम पढ़ोगे, सुनोगे, संग्रह करोगे-स्मृति भारी होती जायेगी।
- 19- काम का अन्त है सीमा। प्रेम का कोई अन्त नहीं, कोई सीमा नहीं, प्रेम आदि-अनादि है।
- 20- आत्मा नहीं मिटती।
- 21- परमात्मा का मनुष्य से कभी मिलन नहीं होता, मिलन की घड़ी में मनुष्य खो जाता है।
- 22- जैसे आग में अग्नि है, जल में शीतलता है-ऐसे ही आत्मा में प्रेम।
- 23- जब कोई अहंकार और विचार को छोड़ देता है तो प्रेम का बादल बरस जाता है।
- 24- मृत्यु के समय में रोने और घबड़ाने की वजह मृत्यु नहीं है, बल्कि जीवन खोने के कारण है।
- 25- जिसने जीवन को ठीक से जिया, वह मृत्यु का आनन्द से स्वागत करते हैं।
- 26- राम एक माधुर्य है, एक स्वाद है।
- 27- जब तुम परमात्मा के प्रेम से भर जाओगे, तभी दूसरे से प्रेम कर पाओगे।
- 28- 'मैं' का कोई बोझ नहीं है; 'मैं' से मोक्ष है।
- 29- मोक्ष वही है, जहाँ कोई वासना न रह जाय।
- 30- मछली को पकड़ने के लिए काँटा में लगा आटा प्रेम है।
- 31- अनुभव के अतिरिक्त और कोई ज्ञान नहीं है।
- 32- साधन से साध्य को प्राप्त करने पर साधन की आवश्यकता नहीं पड़ती है।
- 33- तुमने खोया भले हो, पाये कुछ भी नहीं हो।
- 34- आकाँक्षा मन की चाह है, अभीप्सा प्राण की चाह है।
- 35- तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारे जीवन में कोई और बाधा नहीं है।
- 36- सुख-दुःख का सम्बन्ध है। दुःख है इसलिए सुख है।
- 37- दृष्टा साक्षी टिकता है, और कुछ नहीं।
- 38- सभी चीजें अपने विपरीत में बदल जाती हैं।
- 39- सभी आकार उसी के हैं; और उसका कोई आकार नहीं।
- 40- परम् अज्ञानी बर्फ की तरह कठोर, ज्ञानी पानी की तरह और परम् ज्ञानी भाप की तरह।
- 41- जहाँ न सुख है, न दुःख है, वही आनन्द है, वही अविनाशी है।
- 42- चेतना की गंगा का मूल ही परम् सत्य है।
- 43- सत्य तक एक ही पहुँचता है, भीड़ नहीं।
- 44- सत्य की यात्रा, अन्तर यात्रा है।
- 45- जो समर्पित है, वो डूब नहीं सकता।
- 46- सत्यानुभूति के लिए किसी सहारे की आवश्यकता नहीं रहती है।
- 47- मौत सिर्फ ज्ञानी को पहचानती है; क्योंकि ज्ञानी पर उसका अधिकार नहीं है।
- 48- अकड़ तुम्हें लुटाती है, अहंकार तुम्हारा नशा है, जो तुम्हें लुटाता है।
- 49- मनुष्य की आवश्यकतायें बहुत कम हैं और इच्छाओं का अन्त नहीं है।
- 50- ध्यान के लिए लोगों के पास समय नहीं, और इच्छाओं की पूर्ति के लिए सारा समय कम पड़ता है।

- 51- जब तक तुम अपनी खोज नहीं करोगे तब तक तुम्हारी खोज व्यर्थ है।
- 52- बन्धन और मुक्ति मानी हुई है।
- 53- तुम आटे के लिए जाते हो, कौंटे में फँस जाते है।
- 54- मन को मारना हो तो मन की न मानो।
- 55- तुम्हारी सारी उब्झन अहंकार से होती है। समर्पण से सुलझता है।
- 56- विशेषज्ञ अन्धा होता है और गुरु ज्ञान से सुलझता है।
- 57- सारा अस्तित्व ही राम है।
- 58- ध्यान का मार्ग ज्ञानी का, प्रार्थना का मार्ग प्रेमी का है।
- 59- अहंकार छूट जाता है तो शून्य ही शेष रहता है, शून्यता में ही सत्य का बोध है।
- 60- ध्यानी को अन्तिम क्षण में अहंकार को छोड़ना पड़ता है। प्रेमी भक्त पहले ही अहंकार छोड़ देता है।
- 61- जब किसी मनुष्य में तुम परमात्मा को देखते हो, तभी समाधान शुरू होता है।
- 62- अस्तित्व से जुड़ जाना ही प्रार्थना है यह एक भाव दशा है।
- 63- सब कुछ छीना जा सकता है, लेकिन प्रेम और प्रार्थना छीनी नहीं जा सकती है।
- 64- जीव आत्मा की आकाँक्षा पूर्ण होने की है।
- 65- प्रेम की गहराई में भक्त और भगवान नहीं रहते, केवल भक्ति रह जाती है।
- 66- मन संसारी है, साक्षी सन्यासी है।
- 67- सत्य में होना ही अपने को जानना है, यही आत्म ज्ञान है।
- 68- ध्यान रूखा सूखा होता है, प्रेम रसमय होता है ध्यान तैयारी है प्रेमफल है।
- 69- ध्यान तैयारी है, अन्त में ध्यान मार्ग है, प्रेम लक्ष्य है।
- 70- संसार और स्वप्न मन में होते हैं।
- 71- माया-मन के द्वारा देखा गया अस्तित्व, सत्य-साक्षी के द्वारा देखा गया अस्तित्व।
- 72- हिन्दुओं की साधना मन के पार होने की है, जैनों की साधना कुटस्थ भाव में ठहरने की है।
- 73- अज्ञान के अतिरिक्त मृत्यु कही नहीं है।
- 74- नाट कुछ भी नहीं होता, सिर्फ संयोग बनते हैं और बिखरते हैं।
- 75- संयोग का नाम जीवन है, और बिखर जाने का नाम मृत्यु है।
- 76- राम परम् जीवन है, और मृत्यु अन्धकार है, भय है।
- 77- नित्य मरने का अभ्यास करो, एक घण्टा निश्चेष्ट लेटे रहो।
- 78- भागो नहीं, ठहर कर देखो।
- 79- सत्य को नहीं जानना है, केवल असत्य को पहचान लेना है।
- 80- परमात्मा को खोजना नहीं है, मृत्यु को पहचानना है।
- 81- अहंकार ही मृत्यु से डरता है।
- 82- मन का स्वभाव अभाव को देखना है; जो पास होता, वह दिखाई नहीं देता है।
- 83- दुः ख दौड़ है, सुख क्षणिक विश्राम है। दौड़ का अन्त दुः ख है, ठहर जाना योगानन्द है।
- 84- संतोष का अर्थ है, विश्राम।
- 85- अपने को इतना बड़ा करो कि जो मौजूद है, वह तुममें भर जाये।
- 86- तुम्हारे भय ने शत्रु पैदा किया है; जहाँ भय है, वहाँ शत्रु है।
- 87- जीवन एक शाश्वत स्रोत है।
- 88- जो नहीं बाँटेगा वो छिन जायेगा। इसलिए बचाओ नहीं, बाँटते रहो, देने में ही आनन्द है।
- 89- मुर्दा कोई पाप नहीं करते, जिन्दा प्रायः पाप अपराध करते रहते हैं।
- 90- जो जीते जी मर गया, उसका फिर कोई मूल्य नहीं है और न कोई जन्म है। मिले हुए को अपना न मानना, सब परमात्मा का जानना, जीते जी मर जाना है।
- 91- मन का अभाव शांति है।
- 92- मन से जुड़ा जो शास्त्र है वह दर्शन, चेतना से जुड़ा हुआ जो शास्त्र है वह धर्म, और शरीर से जुड़ा

हुआ जो शास्त्र है वह विज्ञान ।

93- मनुष्य में जो कर्ता का भाव है, वह परमात्मा का दिया हुआ नहीं है।

94- कर्म नहीं छोड़ना है, कर्तृत्वाभिमान छोड़ना है।

95- पूजा में चढ़ने के योग्य मनुष्य के पास केवल अहंकार है। अहंकार, प्रार्थना का भी हिसाब रखता है।

96- भले आदमी के पास जो अहंकार होता है-बड़ा सबल होता है कि मैं ‘‘भला आदमी’’ हूँ। बुरे आदमी के पास जो अहंकार होता है-दीन होता है।

97- विचार रहित, वासना रहित बुद्धि, शुद्ध बुद्धि है।

98- कामना-वासना से प्रेम हृदय) अशुद्ध होता है।

99- भक्ति की दो शर्तें बुद्धि शुद्ध हो, हृदय प्रेम) निष्काम हो।

100- अच्छी बुद्धि पाना कोई कठिन काम नहीं, अच्छा हृदय पाना बहुत कठिन है।

101- अपने चारों तरफ प्रेम भरा हुआ अनुभव करो। दूसरों की कल्पना न रहे।

102- प्रेम करना नहीं प्रेममय होकर रहना है।

103- दूसरे से सम्बन्ध न रहने पर प्रेम शक्ति है।

104- कामना रहित प्रेम शुद्ध प्रेम है।

105- चेतना ही प्रेम के द्वारा जल, पत्र, पुष्प के रूप में सेवा का साधन बनती है।

106- जब कोई परमात्मा से एक होता है तो वह उसका अंश नहीं होता, परमात्मामय हो जाता है।

107- जीवन के परमाधार या परम रहस्य को ईश्वर कहते हैं। ईश्वर अर्थात् ऐश्वर्य।

108- जिसके पार नहीं हुआ जा सकता, या उस अभिव्यक्ति को ऐश्वर्य कहते हैं।

109- क्रोध से लौटती हुई भक्ति का नाम करुणा है।

110- क्रोध और करुणा, घृणा और प्रेम एक ही शक्ति के नाम हैं।

111- ज्ञान-ज्ञान में अन्तर है। एक ज्ञान श्रवण से आता है, एक ज्ञान दर्शन से आता है।

112- जो भी उत्तेजित करे वही पाप है, जो भी तुम्हें शांत करे वही पुण्य है।

113- ब्रह्म जब उत्तेजित होता है तो माया, जब शांत होता है तो ब्रह्म।

114- विवेक पूर्ण व्यक्ति सदा शान्त होगा, विचार पूर्ण व्यक्ति सदा अशांत होगा। बुद्धि विचार करती है, हृदय विवेक देता है।

‘‘मन माया तो एक है, माया मनहिं समाय।

तीन लोक संशय पड़, काहि कहुं समझाय।।

‘‘मन जाने सब बात, जानत ही औगुन करे।

काहे की कुसलात, कर दीपक कुबै पड़े।।

‘‘मन ऐसो निरमल भया, जैसो गंगा नीर।

पीछे-पीछे हरि फिरे, कहत कबीर-कबीर।।

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले।

हीरा पायो गाँठ कठियायो, बार-बार बाकों क्यों खोले।

हल्की थी तब चट्टी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले।

सुस्त कलरी भई मतवारी, मदवा पी गये बिन तोले।

हंसा पाये मान सरोवर, ताल तलैया क्यों डोले।

तेरा साहब है घर माहीं, बाहर नैना क्यों खोले।

कहै कबीर सुनो भाई साधू, साहब मिल गये तिल ओले।।

मूल में विद्युत है, मूल में ध्वनि है - ये दो मत हैं,

115- परिवर्तन के साथ जो भी शाश्वत बनाने की अकांक्षा रखता है, वह दुःख में पड़ता है।

116- तुम सब प्रकार निर्दोष हो जाओ, तभी तुम परमात्मा के द्वारा स्वीकृति पाओगे।

117- परमात्मा से सम्बन्ध हो जायेगा लेकिन उसका पूरा ज्ञान कभी भी नहीं हो सकता है।

118- ज्ञान अनन्त यात्रा है।

- 119- बुद्धि के बढ़ने के साथ सम्पन्नता बढ़ती है।
- 120- मन के पीछे न पड़े, विवेक को जगाओ।
- 121- विवेक समस्त धर्मों का सार है।
- 122- ध्यान हृदय के विवेक को जगाने की प्रक्रिया है।
- 123- विवेक वासना से मुक्ति है, विवेक जागेगा तो वासना खो जायेगी।
- 124- निर्विचार समस्त धर्मों का सार है।
- 125- निर्विचार में ऊर्जा संचित होती है।
- 126- जिसे तुमने खोया नहीं, उसे को तुम खोज रहे हो।
- 127- तुम्हीं बंधे हो, तुम्हें किसी ने नहीं बांधा।
- 128- तुम जो हो, उसकी ही प्रतिध्वनि तुम्हें चारों तरफ सुनाई पड़ती है।
- 129- अपने लिए जिसके पास ज्ञान है, वो तो भीतर प्रकाशित हो जाता है।
- 130- सब सम्बन्ध दर्पण हैं।
- 131- वास्तविक सन्यासी सम्बन्धों से भागता नहीं, सम्बन्धों से जागता है।
- 132- अशान्त होकर जिसे तुम नहीं छोड़ते हो, शांत होने पर कैसे छोड़ेंगे।
- 133- दुःखी होकर जब दोष नहीं छूटते, तो सुखी होने पर दोष कैसे छूटेंगे।
- 134- अपनी मान्यतानुसार जो होना चाहिए था, वो नहीं हुआ तो हानि मानते हैं, दुःखी होते हैं।
- 135- सन्यासी वही है, जो बन्दरपन से मुक्त हो जाय।
- 136- चलते रहो कहीं अटको नहीं।
- 137- जानने वाला मन अभिमानी, ज्ञान का अभिमानी, बंधन में रहता है।
- 138- गुरु शिक्षक नहीं है, वह ज्ञान से मुक्त करता है।
- 139- गुरु खाली रकता है, भरता नहीं है।
- 140- ज्ञान का अहंकार सबसे बड़ा पाप है।
- 141- शब्द से आरम्भ होता है, निःशब्द से अन्त होता है।
- 142- जानकारी का परिमाणात्मक विस्तार और एक आत्मा का गुणात्मक विस्तार।
- 143- प्रेम का जो परम रूप है उसका नाम है श्रद्धा, निष्कृत रूप काम है।
- 144- गुरु में श्रद्धा तभी होगी जब गुरु में परमात्मा दिखता है।
- 145- तुमने सारे मन्दिरों को दुकान में बदल दिया है, देखने वाला शरीर न दीखने वाले को छिपाये है।
- 146- तुम अद्वितीय हो, किसी की तरह नहीं बनना है, आत्मा अधोमुखी न हो उर्ध्वमुखी होने दो। भोग से चादर मैली होती है।
- 147- ज्ञान की विधि ध्यान है, भक्ति की विधि प्रेम है, कर्म की विधि सेवा है।
- 148- यदि तुम प्रेम में कब्जा करना चाहते हो तो प्रेम नहीं है।
- 149- प्रेम अतिविनिय है आक्रमण नहीं, प्रेम के विरोधी हैं। भगवान व्यक्ति नहीं समष्टि है।
- 150- संसार परमात्मा के विरोध में नहीं है, विचार उधार हो समता है भाव उधार नहीं।
- 151- जब तक मांग है, तब तक कोई सत्य या धार्मिक भी नहीं हो सकता है। चाह से भरा आदमी भिखारी है।
- 152- जो भी हम कर रहे हैं वही हमारा पूरा मन हो, उठना-बैठना स्वांस लेना सब देखते रहे। यही जागरण है। चेतना का वर्तमान से जुड़े रहना जागना है।
- 153- नहीं तुम हो वहाँ से दूर चले जाना सपना है, सत्य-असत्य जैसा दिखाई पड़े वही स्वप्न है।
- 154- अगर तुम्हारा कर्ता का भाव छूट जाता है तब, दृष्टि बदल जायेगी और निमित्त भाव आ जायेगा।
- 155- सत्य ही शेष रहता है वह कभी मरता नहीं, वही चेतन है।
- 156- जिसे भीतर खोया है, उसे भीतर ही खोजो, बाहर नहीं।
- 157- परमात्मा को पाना है, संसार को नहीं छोड़ना तुम विराट को जानो।
- 158- कमाना तो भी मांगने को, तुम इकट्ठा करना भी तो लुटाने को, तुम बचाना भी तो बाँटने को।

- 159- सन्यास का अर्थ है-जो जिन्दगी को फूल की तरह देखता है, फल की तरह नहीं।
- 160- जिसने जीवन को व्यवसाय समझा वह गृहस्थ, जिसने जीवन को उत्सव समझा वह संयासी। परस्पर संतुलन छोड़े।
- 161- दुःख अस्तित्व में नहीं है, मस्तिक में है।
- 162- पूरा आकाश तुम्हारा है, पूरा परमात्मा तुम्हारा है बोलने की जरूरत क्या है। मैं केवल हूँ यही आनन्द है।
- 163- जब सुनते हैं तो बोलने की तैयारी करते हैं।
- 164- स्वस्थ चित्त वही है, जो शान्त है।
- 165- सन्त वही है जो साक्षी है, साधु वही जो दृष्टा है।
- 166- माँगने वाला साँसारिक, न माँगने वाला धार्मिक। आत्मा देशकाल के परे है।
- 167- जो खुद को पा लेता है, वह सब पा लेता है।
- 168- तुम संसार में नहीं जी रहे हो, संसार तुममें जी रहा है। तुम साँस नहीं ले रहे हो तुम्हें साँस ले रही है। तुम जीवन नहीं हो, परमात्मा तुममें जीवन है।
- 169- तुमने निष्ठावान प्रेम किया तो वासना तिरोहित हो जायेगी।
- 170- सबसे बड़ा झूठ मृत्यु है। मृत्यु के समय मृत्यु के भय के कारण, चेतना मूर्छित हो जाती है।
- 171- जिसकी मृत्यु मूर्छा में होती है, उनका जन्म भी मूर्छा में होता है।
- 172- होश में जो मरा है, उसके लिए मृत्यु समाप्त हो गयी।
- 173- प्रभुशरण का अर्थ है, मैं अपने को हटाता हूँ। मैं अपने को भूलता हूँ। और तुझे स्मरण करता हूँ।
- 174- जहाँ हम मौजूद हैं, वहाँ प्रभु नहीं मिल सकता।
- 175- जब तक आप हैं जो भीतर छिपा है वह प्रकट न हो सकेगा।
- 176- जब तक आप समाप्त न होंगे, तब तक आप के भीतर जो छिपा है वह प्रकट न होगा।
- 177- जो पाने के लिए छोड़ता है, उसका छोड़ना व्यर्थ है।
- 178- उस त्याग का कोई अर्थ नहीं, जिसके पीछे पाने की कामना और वासना हो।
- 179- जो कुछ पाया जाता है वह संसार है, परमात्मा को पाया नहीं जा सकता।
- 180- वासना, तृष्णा, कामना संसार है।
- 181- सारे संसार को पा लो, स्वयं को खो दो तो व्यर्थ है।
- 182- शरीर वृद्ध हो जाता है किन्तु विद्वान नहीं हो पाता।
- 183- सबसे प्रिय वस्तु का दान वास्तविक दान है।
- 184- ईश्वर नहीं है इसे ईश्वर के अतिरिक्त और कौन सिद्ध कर सकता है ?
- 185- जब भी आप क्रोधित हों तो समझना कि कोई सच आपके आस-पास आ गया है।
- 186- दान सर्वस्व का दान करता है, उसे लोभ-मोह दोषों का भी दान करना चाहिए। ममता का दान ही वास्तविक दान है।
- 187- गुरु अहंकार को मिटाता है।
शिक्षक देता है। गुरु छीन लेता है। गुरु अहंकार को ही छीन लेता है।
- 188- जब कोई व्यक्ति अपने दोष देखता है तब उसमें धर्म का प्रवेश होता है।
- 189- परदोषदर्शी अपने जीवन को नहीं बदल सकता।
- 190- भला-बुरा जो भी करो, होश में आकर देखो। लोग भय के कारण भागते हैं, इसलिए भयभीत हो जाते हैं।
- 191- पास जाने से जो घटता है दूर जाने से बढ़ता है। यही माया है।
- 192- शरीर की, मन की, आत्मा की उम्र।
- 193- आदमी से यंत्र ज्यादा कुशलता-पूर्वक काम करते हैं।
- 194- दुःख-सुख के केन्द्र मस्तिक में है, इसलिए दुःख-सुख की अनुभूति होती है।
- 195- नर्क जो दूसरे को दुःख पहुँचाने में उत्सुक है।

- 196- स्वर्ग जो दूसरे को सुख पहुँचाने में उत्सुक है।
 197- मोक्ष जो अपने को जगाने में उत्सुक है।
 198- धर्म है-बुद्धि के पार जाना, विज्ञान है-बुद्धि के साथ जाना। बुद्धि से ध्यान नहीं होता।
 199- ध्यानी की संवेदनशीलता बहुत प्रगाढ़ हो जाती है।
 200- जैसे-जैसे ध्यान बढ़ता है वैसे-वैसे इन्द्रियां शुद्ध होने लगती हैं।
 201- भोगी जड़ हो जाता है, योगी सचेत हो जाता है।
 202- मृत्यु को देखने वाला अमृत की खोज, भूख शुरू हो जाती है। मृत्यु महात्मा है।
 203- मृत्यु को देखने वाले अमृत की खोज शुरू करते हैं।
 204- जो भीतर है वही संग से प्रकट होता है, चाहे दोष हो या गुण हों।
 205- हाथ की रेखाओं से ज्यादा इच्छाओं की रेखा को विद्वान लोग महत्व देते हैं, यही धोखा है।
 206- जब तक लोभ है तब तक निर्भयता सम्भव नहीं है।
 207- विद्या वही जिससे सत्य श्रेय) मिले।
 208- अविद्या वही है जिससे माया प्रेम) हाथ लगे।
 209- विज्ञान अविद्या का हिस्सा है।
 विद्यालय वही है, जहाँ जीवन पाने की कला सिखाई जाती है, आजीविका पाने को नहीं।
 210- पारदर्शी दृष्टि से प्रत्येक वस्तु में परमात्मा का दर्शन होता है।
 211- सभी नाम रूपों में परमात्मा की ही छवि देखो।

ध्यान के चार चरण :-

- प्रथम अवस्था में गहरे स्वांस, दस मिनट तक, धौंकनी की तरह लेना और छोड़ना।
 - दूसरी अवस्था में दस, मिनट में जो हो उसे होने दो।
 - तीसरी दस मिनट में, हू-हू की आवाज करो।
 - चौथे दस मिनट में आप न रहेंगे।
 - पाँचवे दस मिनट में, आनन्द में और शांत में हो जाओ।
- 212- केन्द्र की तरफ जाती हुई चेतना का नाम ब्रह्मचर्य है, बाहर की ओर जाती हुई चेतना का नाम अब्रह्मचर्य है।
 213- धन पर हाथ पड़े इसके पहले देवी सम्पदा का ज्ञान हो जाना चाहिए।
 214- आस्तिक की श्रद्धा उसमें है जो मरता ही नहीं, और नास्तिक की श्रद्धा उसमें है जो मरता है।
 215- भीतर सरलता ले जायेगी और बाहर जटिलता ले जायेगी।
 216- नींद खुलते ही अंगड़ाई लें। पूरे शरीर को ताने और ढीला छोड़ें। ताकि शरीर की शक्ति पूरी तरह प्रवाहित हो जाये।
 217- ओम की ध्वनि करने से अपने स्वरूप की झलक मिलती है।
 218- जो बोया जाता है, वही काटा जाता है। नास्तिक न कुछ बोता है और न कुछ काट सकता है।
 219- जैन साधु किसी को नमस्कार नहीं करते क्योंकि वे भगवान को नहीं मानते हैं।
 220- जितना विनम्र भक्त होता है, तपस्वी नहीं होता।
 221- जो मरता है बेहोश, वह जन्मता है बेहोश। इसलिए जन्म का ही कोई स्मरण नहीं रहता है।
 222- जो व्यक्ति होश पूर्वक मृत्यु में प्रवेश कर जाये, उसके लिए मृत्यु सदा के लिए समाप्त हो जाये।
 223- जो होश पूर्वक मरता है उसके लिए कोई मृत्यु नहीं है; फिर मृत्यु ही उनके लिए अमृत का द्वार हो जाती है।
 224- बेहोशी हमारा शरीर से जोड़ है, वही सेतु है।
 225- जैसे ही आप हट जाते हैं कि शाम्बत प्रकाश आपके भीतर भरना शुरू हो जाता है।
 226- प्रभु-स्मरण का अर्थ है मैं अपने को हटाता हूँ, मैं अपने को भूलता हूँ और तुझे स्मरण करता हूँ।
 227- आपके और परमात्मा के मिलने का कोई उपाय नहीं है। जब आप मिट जाते हैं, तब उसका प्रकट होना शुरू हो जाता है।

- 228- अंधेरा होता है तो प्रकाश नहीं होता, प्रकाश होता है तो अंधेरा नहीं होता। आप अंधेरा है।
- 229- प्रभु स्मरण स्वयं का विस्मरण है।
- 230- जब तक आप टूट न जायें, मिट्टी में न मिल जायें, मर न जायें, तब तक आप के अन्दर जो छिपा है वह प्रगट नहीं होगा।
- 231- लोग छोड़ते भी हैं तो पाने के लिये तो। छोड़ना व्यर्थ हो जाता है।
- 232- जो किसी भोग के लिए किया गया हो उस त्याग का क्या अर्थ, जिसके पीछे पाने की कामना और वासना हो, सौदा हुआ, त्याग न हुआ।
- 233- जब आप कुछ पाना चाहते हैं तो आप को कुछ देना पड़ता है, उस देने को त्याग कोई नहीं कहेगा।
- 234- त्याग का अर्थ ही है कि कोई दे और पाना न चाहे।
- 235- परमात्मा खरीदा नहीं जा सकता। इसलिए परमात्मा को पाने के लिए अगर आप कुछ देते हैं, तो आप परमात्मा को नहीं पा सकेंगे।
- 236- वासना, तृष्णा-कामना संसार है।
- 237- यज्ञ भी किया जाता है तो संसार को जीतने के लिए।
- 238- अहंकार सब कुछ छोड़ सकता है, सिर्फ आप अहंकार भर को मत छोड़ें।
- 239- बच्चे के पास ज्यादा साफ-सुथरी बुद्धि होती है।
- 240- रुपये का मूल्य नहीं है, उसमें मूल्य डाला गया है।
- 241- दुनिया जितने सार्वभौम रूप से शिक्षित होगी, उतनी सार्वभौम रूप से चालाक हो जायेगी।
- 242- ईश्वर होना गणित और तर्क और बुद्धि की बात नहीं है।
- 243- फजीहत राम, कृष्ण की करनी मुश्किल है। फजीहत समझदार भर की जा सकती है।
- 244- रामकृष्ण ने कहा-ईश्वर के अतिरिक्त और कौन ईश्वर को गलत सिद्ध कर सकता है।
- 245- जब कोई झूठ कहता है तो क्रोध नहीं आता, सच कहने पर क्रोध आता है।
- 246- आप को अगर कोई गाली देता है, तो आप फौरन खड़े हो जाते हैं, रक्षा के लिए।
- 247- ~~आ~~ ~~ख~~ ~~क~~ ~~र~~ ~~ह~~
- 248- वस्तुओं और व्यक्तियों को छोड़ने का कोई अर्थ नहीं है, मेरेपन का भाव छोड़ना चाहिए।
- 249- इससे पहले कि बेटा उपद्रव करे उसे बाप बना देना जरूरी है। बाप बनते ही बाप की पीढ़ी का हिस्सेदार हो जाता है।
- 250- शादी होते ही जैसे खूँटे से बँध जाता है। घर चारों तरफ से घेर लेता है।
- 251- आस्था तर्क नहीं करती है।
- 252- शिक्षक और गुरु में फर्क है। शिक्षक आप को भरता है, गुरु आप को खाली करता है।
- 253- जब कोई व्यक्ति अपने दोष को देखता है, तो जीवन में धर्म प्रारम्भ होता है।
- 254- यदि कोई गाली भी दे, तो आप सोचते हैं कि मेरी ही किसी भूल का कारण है, तो आप अपने जीवन को बदलने में लग जायेंगे। यदि आप सोचते हैं कि उसका कसूर है तो आप अपनी तरफ ध्यान भी नहीं देंगे। धार्मिक और अधार्मिक चित्त का यही भेद है।
- 255- क्रोध का एक ही उपाय या औषधि है कि आप होश से भर जायें।
- 256- जीवन में जो कुछ भी बुरा होता है वह बेहोशी के कारण, जीवन में जो कुछ भी शुभ होता है वह होश के कारण होता है।
- 257- जब तक मृत्यु को न जान लें, तब तक इन्द्रियों और मन को खुराक न दें।
- 258- यदि भोजन लेना बन्द कर दें तो पाँच दिन तक भूख लगेगी। पाँच दिन बात तकलीफ भूख की बन्द हो जायेगी, भूख नहीं लगेगी; क्योंकि शरीर अपना ही मांस पचाना शुरू कर देगा। इसलिए रेज उपवास से एक पौंड वजन, दो पौंड वजन गिरने लगेगा। दो पौंड भोजन आप पचा रहे हैं। शरीर में दोहरी प्रक्रिया है सुरक्षित भोजन है आप के शरीर में, वह तीन महीने में चुक जायेगा। मृत्यु उसके बाद उपरिथत हो जायेगी।
- 259- बुद्ध ने कहा-तुम्हारी प्रार्थनायें अगर तुम्हारे शत्रुओं के लिए नहीं तो व्यर्थ है।
- 260- रात्रि में सोने के पूर्व दस मिनट आँख बन्द कर, मुँह से श्वाँस निकालें, ओ की ध्वनि करें, फिर

ओठ बन्द कर लें शरीर अपने आप श्वास ले लेंगे।

261- जितनी इस संसार की उम्र है, उतनी ही उम्र इस चेतना की भी है। यह शरीर नया हो, लेकिन इसके भीतरी छिपी चेतना नयी नहीं है।

262- एक उम्र शरीर की होती है और एक उम्र मन की होती है।

263- ज्ञानी का अर्थ है जिसकी नजर दूसरे पर से हट गयी।

264- मुझे स्वयं को देखना है तो बुद्धि की कोई जरूरत नहीं है। इसलिए बुद्धि मुक्त 'धर्म' है।

265- ध्यान के साथ संवेदना बढ़ती है, भोग के साथ कम होती है।

266- कितनी ही लम्बी उम्र, अल्प है। जो समाप्त हो जायेगी, वह लम्बी कैसे ?

267- यह मनुष्य नष्ट होने वाला मरण धर्मा है। इस तत्व को भली भाँति समझने वाला मनुष्य लोक का निवासी है। वह कौन मनुष्य है जो कि बुढ़पे से रहित, न मरने वाले आप सद्गुरु महात्मा (मृत्यु) का संग पाकर भी स्त्रियों के आमोद-प्रमोद का बार-बार चिन्तन करता हुआ बहुत साल तक जीवित रहने की आशा करेगा।

268- जिसे भी मौत का स्मरण आ जाता है, सब व्यर्थ हो जाता है।

269- मृत्यु को देखने के साथ ही अमरत्व शुरू हो जाता है। मृत्यु महात्मा है।

270- हर मौत आपकी मौत की खबर है।

271- मृत्यु के सामने खड़े होकर अमरत्व की खोज, यही समाधि की स्थिति है।

272- सुबह के ध्यान के सम्बन्ध में थोड़ी सी बात समझ लें, पहले दस मिनट तक आप जितने जोर से श्वास को भीतर ले सकें और बाहर उलीच सकें, जैसे सारा शरीर एक धौंकनी बन जाय लोहार की; सब भूल जायें सिर्फ एक ही याद रह जाये, श्वास भीतर और बाहर की सारी शक्ति श्वास को लेने में और छोड़ देने में लग जायें, तो आप के भीतर जो नाचिकेत अग्नि है, उस पर चोट पड़ेगी इस स्थिति में ही भीतर छिपी हुई अग्नि जगेगी।

273- दूसरे दस मिनट में आप के भीतर जो भी छिपा है-विक्षिप्ततायें, दमित वेग, रोग-वह सब बाहर फेंक देने हैं। चीखना हो चीखें, रोना हो रोयें, चिल्लाना हो चिल्लायें। मन जो भी करना चाहे करने दें। दूसरा चरण है स्विक।

274- तीसरे दस मिनट में एक महामंत्र है 'हू' जो से हू, हू नाचते, गाते, चिल्लाते, घूमते, हुए इस आवाज को करना है। यह 'हू' आपके भीतर की अग्नि को धुँधुँ कर जला देगी। और अगर ठीक से प्रयोग हो तो इन तीनों चरणों में आप मित जायेंगे।

275- चौथे चरण में आप की मौजूदगी नहीं है। चौथा चरण मौन न हो जाने का चरण है। आप जैसे भी हों कैसे रुक जायेंगे। जब मैं तीसरे चरण के बाद कटूँ, ठहर जायें तो आप को वही रुक जाना है फिर आप को अपनी सुविधा नहीं बनानी है - कि आप जल्दी से लेट जायें आराम से। उस सुविधा बनाने में आप का अहंकार वापिस आ जायेगा, अगर हाथ उँचा था तो उँचा रह जाये; एक पैर उठा था तो उठा ही रह जाये; जैसे आप मर गये हों। आप सोचेंगे कि कहीं गिर पड़े, तो गिर पड़े तो कोई हर्जा नहीं। लेकिन अपनी तरफ से आप कोई इंतजाम न करें। यहाँ फिर कोई नहीं बचा, सिर्फ लाशें रह गयीं। यह चौथा दस मिनट का चरण है।

और इस चौथे चरण के बाद पाँच-दस मिनट अभिव्यक्ति आनन्द के लिए होगा। इस बीच जो शांति और आनन्द आप के भीतर घना हुआ है। उसको आप आनन्द से प्रकट करें। जैसे-छोटे बच्चे हो गये वापिस नाचें, हस्यें, कूदें।

276- मनुष्य की सारी इन्द्रियों का विकास बाहर के जगत को जानने की आकांक्षा से हुआ है।

277- जिसने भीतर की थोड़ी सी समझ पैदा कर ली, वह संसार से फिर अछूता निकल जायेगा।

278- साक्षी मन का लक्षण है, उसे जो भी मिल जाये, वह उसे परमात्मा की अनुकम्पा मानता है।

279- साक्षी का मतलब यह है कि वह जानता है मैंने कभी कुछ नहीं किया मैं सिर्फ देखने वाला हूँ।

280- जिसकी कोई अपेक्षा या कामना नहीं है, उसे आप कभी दुःखी नहीं कर सकते। दुःख आता है अपेक्षा के टूट जाने पर।

281- जिसका आदर करना ही पड़े, वही गुरु है।

282- जो वैराग्य से भरा है वही भीतर जा पायेगा। जो राग-भाव से भरा है, वही बाहर जायेगा।

283- ब्रह्मविद्या का अर्थ है - आत्यंतिक रूप से भीतर जाना। उस बिन्दु पर पहुँच जाना, जहाँ सिर्फ भीतर का ही अस्तित्व रह जाता है।

284- आस्तिकों ने लिखा है, नास्तिकों की बातें मत सुनना : कि उनके शास्त्र मत पढ़ना । क्योंकि उससे मन डिंगता है।

285- जो भीतर छिपा है, वही आप में पैदा किया जा सकता है।

286- मनुष्य की हाथ की रेखा से ज्यादा, उसकी इच्छाओं की रेखाओं को पहचानना जरूरी है।

287- अन्ततः यदि कोई व्यक्ति आनन्द को ही खोजता चला जाये तो परमात्मा तक पहुँच जाता है।

288- जब तक भय होता है तब तक प्रलोभन भी होता है। भय और लोभ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

289- जब तक लोभ है तब तक वे निर्भय नहीं हो सकते हैं।

290- प्रेम का अर्थ है - वासना, जिससे प्रफुल्लित होती है। श्रेय का अर्थ है।

291- वह विद्यालय है जहाँ व्यक्ति को स्वयं पाने की, सत्य को पाने की, आजीविका पाने की नहीं, जीवन को पाने की कला सिखायी जाती है।

292- रात्रि का ध्यान 'त्राटक' का प्रयोग, - पहले चरण में पन्द्रह मिनट तक आप मेरे ओर एक-एक देखेंगे, और झपकानी नहीं; पलक गिरने मत देना है, चाहे आँसू बहने लगे। दोनों हाथ ध्यान करते वक्त उँचे उठा लेने हैं और खड़े होकर ध्यान करना है। मैं अपने हाथ से आपको इशारा करूँ तो आप को अपनी पूरी शक्ति से कूदना है, ताकि आपके भीतर जो छिपी हुई उर्जा है, वह सक्रिय हो जाये। और मेरी तरफ लगाये रखनी है, और दोनों हाथ आकाश की ओर ऊपर रखना है। और हूँ, हूँ, हूँ का महामंत्र बोलना है। पन्द्रह मिनट के बाद मैं रुक जाने को कहूँगा जो जैसा हो उसे वही और बन्द करके रुक जाना है। पन्द्रह मिनट मुर्दे की भाँति मौन, शून्य शांति में खड़े रहना है या गिर गये हो तो गिरे रहना है।

बाद में पन्द्रह मिनट अभिव्यक्ति का समय होगा। तब पूरे दिन आनन्द को प्रभू के प्रति नाचकर, गाकर प्रगट करना है। डरें नहीं कि कोई क्या कहेगा।

293- आप मृत्यु के कारण नहीं डर रहे हैं अपनी नासमझी के कारण मृत्यु से डर रहे हैं।

294- परमात्मा आविष्कार है। सभी ध्वनियाँ उसी की हैं।

295- यह कहता है कि हमारी पकड़ में नास्तिक ही आता है। आस्तिक मेरी पकड़ से छूट जाते हैं; क्योंकि आस्तिक की श्रद्धा उसमें है जो मरता ही नहीं नास्तिक की श्रद्धा उसमें है जो मरता है।

296- विभिन्न-विभिन्न रूपों में विद्युत ही सघन होकर पदार्थ हो गयी है।

297- पूरब के मनीषियों ने चेतना की अत्यधिक गहराई में उतर-उतर कर चेतना की जो आखरी बिन्दु है, उसे ध्वनि कहा गया है। ध्वनि का यह जो अन्तिम रूप है उसे 'ओंकार' कहा गया है।

298- बाहर से हम कुछ न सुनें और भीतर कोई विचार न चले तो धीरे-धीरे इस ध्वनि का अनुभव होने लगता है।

299- जो भी आप पैदा करते हैं, वह आप से बड़ा नहीं हो सकता है।

300- दो चीजों के टकराने से शब्द पैदा होते हैं, अनाहत नहीं है।

301- अनाहत नाद या ओम किसी चीज की टक्कर से पैदा नहीं होता। यह आस्तित्व का स्वरूप है, शाश्वत है।

302- जब तक आँसू के पीछे मन न जुड़ा हो तब तक कुछ भी अनुभव नहीं होता है।

303- जिन्हें भी ओम की ध्वनि सुननी हो, उन्हें अपनी शक्ति के अपव्यय से बचना चाहिए।

304- रात को दस मिनट ओ-ओ-ओ की आवाज करते हुए मुँह से श्वास छोड़े और सो जायें।

305- सुबह जैसे ही पता चले नींद खुल गई है, आँसू मत खोलें जैसा कि बिल्ली या कुत्ता शरीर को खींचता है, तानता है वैसा पूरे शरीर के अंगों को खींचें, ताने शिथिल करें, ताकि पूरे शरीर में शक्ति प्रवाह हो जाय। पैरों को, हाथों को, गर्दन को पूरे शरीर को अकड़ायें, दो-दो मिनट ऐसा करने के बाद आप पायेंगे कि स्फूर्ति आ गई, सारा शरीर जग गया। तब दो मिनट खिल-खिलाकर पागल की तरह हँसे। और बन्द ही रखें, उसके बाद ही आप बिस्तर छोड़ें ताकि शुभमुहूर्त-सुबह ही रेचन शुरू हो जाये।

306- आदमी बोता इसलिए है कि काट सके।

307- जो दिखाई पड़ता है, वह केवल आभास है। जो दिखाई के भीतर छिपा है, दिखाई नहीं पड़ता, वही सत्य है।

308- मुर्दे के भी बाल और नाखून बढ़ते हैं। वह शरीर का मरा हुआ हिस्सा है, मुर्दे का शरीर भी उस मरे हुए हिस्से को फँकता रहता है।

309- भारत में मनस्वी कहते हैं, कभी आप भी वृक्ष थे। आज आप मनुष्य हैं, वह परिधि का परिवर्तन है।

310- यह सबका आत्म रूप, परम पुरुष समस्त प्राणियों में रहता हुआ भी, माया के पर्दे में छिपा रहने के कारण प्रगट नहीं होता। केवल सूक्ष्म तत्वों को समझने वाले पुरुषों द्वारा ही अति सूक्ष्म तीक्ष्ण बुद्धि से देखा जा सकता है।

311- संसार के गहन-से-गहन में छिपा जो केन्द्र है, वही, ब्रह्म है।

312- उपनिषद् उस बुद्धि को सूक्ष्म कहते हैं जो पवित्र है, शुद्ध है, शांत है।

313- निर्विकार बुद्धि का नाम सूक्ष्म बुद्धि है।

314- दार्शनिक किसी भी चीज को तोड़कर उसके भीतर प्रवेश करने की कोशिश करता है।

315- सब्त अपने को शुद्ध करके किसी को तोड़कर नहीं, अपनी शुद्धता के माध्यम से किसी में प्रवेश करने की कोशिश करता है।

316- प्रेम, जब कोई व्यक्ति सच में ही प्रेम करे या प्रेम में हो जाय तो शरीर भूल जाता है ऐसा ही प्रेम जब कोई सारे अस्तित्व से करता है, तो उसका नाम प्रार्थना है।

317- सारे

सर्वप्रथम

बुद्धि में विलीन करे, ज्ञानस्वरूप बुद्धि को महान आत्मा में विलीन करे। और इसको शास्त्रस्वरूप परम पुरुष परमात्मा में विलीन करे यह प्रक्रिया बुद्धि के सूक्ष्म और शुद्ध होने की है।

318- मौन का अर्थ है बाहर और भीतर बोलना बन्द करे बोलने के द्वारा बुद्धि बहुत कुछ को इकट्ठा करती रहती है। आप सिर्फ बोलते नहीं है, बोला हुआ सुनते भी हैं, उससे ही संस्कार और सघन हो जाते हैं।

319- जिसे बोलने से किसी को कोई लाभ नहीं हुआ है, उसे बोलने से हानि निश्चय ही होती है।

320- साधक को वाणी संयत कर लेना चाहिए। वही बोले जो बिल्कुल अनिवार्य हो, जिसके बिना चल ही नहीं सकेगा। बोलकर न मालुम आप कितने उपद्रवों में पड़ रहे हैं।

321- सारे धर्मों का आधार मौन है महावीर बारह वर्ष मौन रहे, बुद्ध ने अनेकों दिन मौन बिताये। जीसस बोलने के पहले मौन में चले गये। मुहम्मद को कुयान का अवतरण हुआ, जब वह परम मौन की अवस्था में थे। इस जगत् में जे भी सत्य का अवतरण हुआ है, तब हुआ है जब भीतर सब शांत है। उस शांत क्षण में ही हमारा तालमेल हमारी 'ट्यूनिंग' ब्रह्मा से जुड़ जाती है।

322- जब सबमें परमात्मा ही है, तो निन्दा किसकी की जाय ?

323- हृदय में उसे पहचानो जो अजन्मा चेतना तत्व है। संसार और निर्वाण एक ही है, ज्ञान दृष्टि से ही दिखता है।

324- जगत् में जितने भी अस्तित्व है वह एक के ही प्रतिबिम्ब हैं।

325- शुद्ध मन वह है जहाँ न तो बुरा रह जाता है न तो भला।

326- रंग कितने ही हों प्रकाश एक ही है।

327- जब तक विकार शेष है, तब तक अशुद्ध है।

328- संत न साधु है न असाधु है।

329- कोरा मन ही शुद्ध मन है।

330- रूस में जितनी नैतिकता है उतनी भारत में नहीं और रूस नास्तिक है।

331- धार्मिक व्यक्ति का आचरण नीति, नियम से पूरा होता है।

332- उपनिषद् करने की बात नहीं करता। उपनिषद् कहता है ऐसे हो जाओ।

333- मन ही सब कुछ अशान्त है मन ही शान्त होना चाहता है।

334- विवेक का अर्थ है-होश या सजगता।

335- होश पूर्वक साँस लेने लगे, यही साधना है।

336- विवेक सब धर्मों का सार है।

337- प्रत्येक क्रिया होश में देखो

- 338- मन अशान्त है मूर्ख के कारण ।
- 339- इन्द्रियों से लड़ना नहीं चाहिए ।
- 340- क्षुद्र इन्द्रियों से भूलकर भी मत लड़ना । इन्द्रियों क्षुद्र हैं) तुम स्वयं सही ।
- 341- जो आज्ञा पूरी नहीं करा सकते, वह किसी को न दो ।
- 342- वही संकल्प लो जो पूरा हो सके ।
- 343- व्यर्थ से बचो, सदा होश में रहकर सब कुछ करो ।
- 344- जागृति का क्षण ।
- 345- एक मिनट तक घड़ी के एक सेकेण्ड तक नजर रखो, यह एक साधना है ।
- 346- जब आप कोशिश करेंगे एक पूरे एक मिनट तक तब तीन महीने में ध्यान स्थिर हो सकेगा ।
- 347- दिया जलेगा तो चोर नहीं घुसेगा अर्थात् कुवासनाओं के प्रति जागृत रहो ।
- 348- परम् सत्य की छाया शांति है ।
- 349- भगवान कोई व्यक्ति नहीं एक आस्था है, चेतना की चरम अवस्था है ।
- 350- मनुष्य भगवत का बीज है ।
- 351- त्याग करने की फिक्र मत करो प्राप्त की अनुभूति का प्रयत्न करते रहो ।
- 352- नीची सीढ़ी को छोड़ने की कोशिश मत करो, ऊँची सीढ़ी पर चढ़ने की कोशिश करो ।
- 353- जीवात्मा से श्रेष्ठ है अव्यक्त माया शक्ति, माया शक्ति से भी श्रेष्ठ है परम पुरुष ।
- 354- आप के भीतर जो अव्यक्त शक्ति है वह श्रेष्ठ है उससे भी श्रेष्ठ है परमात्मा, जो सारे विश्व को धारण किये है ।
- 355- स्मृति और आत्मा-विद्वान के पास स्मृति होती है और संतों के पास आत्मा ।
- 356- अस्तित्व से प्रेम प्रार्थना है ।
- 357- ध्यान से बुद्धि शुद्ध होती है ।
- 358- मौन का अर्थ बाहर भीतर का बोलना बन्द ।
- 359- सारे धर्मों का आधार मौन है ।
- 360- आदत और अनुभव में बहुत फर्क है ।
- 361- आदत ऊपर से थोपी गयी व्यवस्था है अनुभव भीतर से आया हुआ प्रभाव है ।
- 362- शुद्ध अस्तित्व आत्मा है ।
- 363- पत्नी ही नहीं मरती, पति भी मरता है ।
- 364- गर्भ का सुराज्जन्म लेने से ही समाप्त हो जाता है । ऊर्जा को बहिर्मुखी न होने दो तो अन्तरमुखी हो जायेगी ।
- 365- सुराज्जी आदमी वही हो सकता है जो जहाँ है वही संतुष्ट है वही सन्यासी है ।
- 366- जो बाहर की इच्छाओं को छोड़ देता है वही विवेकशील है ।
- 367- जगत में न कुछ पकड़ने योग्य है, न कुछ छोड़ने योग्य । ऐसी तटस्थता में जो आदमी ठहर जाता है । वही विवेक है ।
- 368- स्वप्न में जागृत असत्य है और जागृत में स्वप्न असत्य है । देखने वाला असत्य है और जो दीख रहा है वह माया है । जो स्वयं को नहीं देख पाते वह अन्धे के बराबर हैं । विद्युत को किसी ने देखा नहीं है उसके उपयोग को देखा है ।
- 369- शुद्ध मन वह है जहाँ न बुरा रह जाता है न भला ।
- 370- उपनिषद् का सिद्धान्त है परमेश्वर सत्यमय है सत्य ही है ।
- 371- जहाँ तक भय और लालच है वहाँ तक अहंकार है । जो अपने को बचाने की कोशिश करता है । वह अपने को मिटाने की कोशिश करता है वह पा जाता है । मृत्यु के देवता यम से सभी परिचित हैं लेकिन जीवन के देवता को कोई बिरले ही जानते हैं । मनोदशा के अनुरूप हम संसार और सत्य को देखते हैं ।
- 372- परमात्मा परम शून्य का बोध है ।
- 373- विराट कोरापन का बोध है ।

- 374- परलोक में देह रहित आत्मायें रहती हैं।
- 375- सुख-दुःख एक उत्तेजना है, उत्तेजना से मुक्त होने पर ही आनन्द का अनुभव होता है।
- 376- अव्यक्त शक्ति का नाम ईश्वर है।
- 377- ब्रह्म निर्वाण और मोक्ष ये पर्यायवाची शब्द हैं।
- 378- इन्द्रियों से मन, मन से बुद्धि, बुद्धि जीवात्मा, जीवात्मा अव्यक्त शक्ति, अव्यक्त शक्ति से सर्वथा आकार रहित परम् पुरुष श्रेष्ठ है।
- 379- जब मन के सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ भली भाँति स्थिर हो जाती हैं, और बुद्धि भी किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करती, उस स्थिति को परम गति कहते हैं।
- 380- अचाह छलाक है सत्य में।
परमात्मा खोजी के भीतर ही, आरम्भ से अन्त तक मौजूद है।
- 381- परमात्मा आत्मगत शक्ति है।
- 382- चिंतन का अर्थ टटोलना है।
- 383- जो व्यक्ति जितना दोहराने में पड़ जायेगा, उतनी ही चिन्तन की क्षमता क्षीण होती है।
- 384- कामना में संसार और निष्कामता में ही पूर्णता है।
- 385- ठहर जाना ही मोक्ष है, दौड़ना ही बन्धन कारी है।
- 386- जानने वाले में ठहरो, यही योग है।
- 387- साक्षी भाव, चेतन की अनुभूति ही अध्यात्म योग है।
- 388- परमात्मा प्रत्येक क्षण में कण के साथ सत्ता के रूप में विद्यमान है।
- 389- महत्वाकांक्षा सदा अपने आगे चलती है।
- 390- यहूदी धर्म भय के ऊपर आधारित है।
- 391- नियम को मानना मोक्ष पथ है, नियम को नहीं मानना मृत्यु पथ है।
- 392- सुख से कोई मुक्त होना नहीं चाहता इसलिए देवता मुक्ति नहीं चाहते हैं।
- 393- मृत्यु में देह छूटती है लेकिन हमारा होना नहीं छूटता। प्रेम की पूर्णता है अहंकार का विनाश, परमात्मा शून्य अस्तित्व है।
- 394- कामना का विसर्जन ही मृत्यु का विसर्जन है।
- 395- प्रेम-सूर्य, प्रीति-किरण।
- 396- प्रीति देवमय है तो शुद्ध वस्तुमय वैश्य भय शक्ति, क्षत्रिय ओर ज्ञानमय प्रेम ही ब्राह्मण है।
- 397- जो तुम्हें गाली देता है, वो तुम्हारे अहंकार को तोड़ता है।
- 398- पशुता क्रोध के उत्तर में दुगना क्रोध पैदा करती है।
- 399- जो पाश में बंधा है वह पशु है।
- 400- जब कोई तुम्हें गाली दे तो हंसना, जब तुम्हारी कोई प्रशंसा करे तब रोना, कोई अपमान करे तो सावधान रहो, अपमान का उत्तर सम्मान से दो।
- 401- जो शब्द से नहीं कहता वह शूक देने से कहा जाता है (बुद्ध कथा)।
- 402- शूकना, मारना, गाली देना भी एक तामसी भाव है। तामसी मनुष्य अपने ही हाथ से काँटता बोता है और दुःख सहता है। सतोगुणी मनुष्य फूल बोता है और सुगन्ध लेता है।
- 403- सम्मान और अपमान की क्रिया काँटे और फूल के समान है।
- 404- प्रायः हम वही करते हैं जो हमें नहीं करना चाहिए।
- 405- निर्वासना से भरी हुई चेतना ही परमात्मा है।
- 406- पूर्ण तृप्ति परमात्मा है, अतृप्ति जीवात्मा है।

जीवन को सुन्दर बनाने के लिए

मन, वाणी और कर्म से किसी को कष्ट नहीं पहुँचे, इसके लिए हमें सदा सावधान रहना चाहिए।

व्यर्थ वार्ता, व्यर्थ चेष्ट तथा व्यर्थ चिन्ता में अपना समय नाष्ट नहीं करना चाहिए।

जैसा व्यवहार हम दूसरे से नहीं चाहते वैसा हमें भी दूसरों के साथ नहीं करना चाहिए।
जो कार्य हम अभी कर सकते हैं उसे भविष्य के लिए नहीं टालना चाहिए; क्योंकि उससे आलस्य को पुष्टि होती है।

पुण्य बढ़ाने के लिए आलस्य छोड़कर शरीर श्रमी, मन संयमी हृदय उदार और बुद्धि विवेकी होनी चाहिए।

हमें अपने से छोटों की सहायता और बड़ों की सेवा के लिए सदैव तत्पर होना चाहिए।

अध्ययन में बाधक-असंयम, आसक्ति, द्वेष, अभिमान व कुसंग से बचते रहना चाहिए।

अवकाश के समय जगत के रचयिता का स्मरण करना चाहिए।

सभी नाम रूपों के प्रकाशक, चेतन, शक्ति को ही आत्मा परमात्मा जानकर इसी में बुद्धि को लगाते रहना चाहिए।

जिससे प्राणी की प्रगति, उन्नति, सद्गति, परम गति सुगम होती जाय वही सार्थक जीवन है।

जो निर्मल हो, निर्दोष हो, आकर्षक हो, सुखद् हो, हितकर हो और सत्य से विमुख न बनाये, वही सुन्दर जीवन है।

प्रत्येक मनुष्य को जिस समय जो कुछ करना चाहिए उसमें देरी न लगाकर उसी समय करना प्रगति के लिए शुभ मुहूर्त है।

मनुष्य के जीवन में जितने भी आरंभ हैं, उन्हें विधिवत् सम्हालने रहना उन्नति के लिए मुहूर्त है।

प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन के दिवस का आरम्भ प्रातः काल से देखता है और उसी समय से उसके दैनिक कृत्यों कभी आरम्भ हो जाता है। जो बालक विद्यार्थी प्रातः के आरम्भ को न देखते और समय सोता रहे वह अपने दैनिक कृत्यों का आरम्भ निश्चय समय में नहीं कर सकेगा। इसका दुपरिणाम दिवस के अन्त तक चलता रहेगा क्योंकि प्रत्येक कार्य पिछड़ेगा या फिर कार्य छूट ही जायेगा। इसी प्रकार जो मनुष्य जीवन के आरम्भ में, बाल्यावस्था में शक्ति संचय का आरम्भ, विद्याध्ययन का आरम्भ, सदाचार, शिष्टाचार का आरम्भ विधिवत् न करेगा उसका दुपरिणाम मृत्युपर्यन्त पीछे-पीछे चलेगा।

बाल्यावस्था के आरम्भ से ही विद्याध्ययन में तत्पर रहना सदाचार एवं दूसरों के प्रति यथोचित शिष्टाचार में भूल न करना, सद्गति का मुहूर्त है।

मनुष्य अपने दैनिक आचार से दूर्गति या सद्गति प्राप्त करता है। आलसी, प्रमादी, दुर्बल, अभिमानी मूर्ख, ही सदाचार, शिष्टाचार की अवहेलना करता है।

कुस , कुशिक्षा, दुर्बुद्धि से दुश्चार का आरम्भ होता है। और सुस , सद्शिक्षा, सुबुद्धि से सदाचार का आरम्भ होता है।

दुश्चार का मुहूर्त कुविचार है और सदाचार तथा शिष्टाचार का शुभ मुहूर्त सद्विचार है।

सद्विचार से ही जीवन की सुन्दरता का आरम्भ होता है।

सुस और सुसंस्कारों से ही सद्विचार प्रस्फुटित, पुष्पित होते हैं।

प्रत्येक बुद्धि प्रधान व्यक्ति को अपने जीवन का सुन्दर निर्माण करने के लिए कुस से अथवा अशिष्ट, उद्दण्ड, इच्छाकारी, मिथ्याभिमानि व्यक्ति के सम्बन्ध से बचते रहना चाहिए।

आरम्भ में ही अशुभ का त्याग और शुभ का ग्रहण बहुत सुगम है, जो आरम्भ में शुभ-अशुभ का विचार न करके अशुभ को स्थान दे देता है, आगे चलकर उसे निकालना दुष्कर हो जाता है।

वही सौभाग्यशाली है, जो आरम्भ से पवित्र और सुन्दर जीवन के प्रति आकर्षित होकर, अशुभ और असुन्दर की ओर से मुख फेर लेता है।

मनुष्य के मन में जैसा चित्र भर जाता है, वैसा ही स्वयं को बनाता है। शुभ या अशुभ चित्र के अनुरूप ही उसका आन्तरिक चरित्र होता है।

जिसका चरित्र पवित्र है उसी का जीवन आदर्श है, सुन्दर है। वे मूढ बुद्धि के मनुष्य हैं। जो वाह्य चित्र में मोहित होते हैं, परन्तु चरित्र पर ध्यान नहीं देते। बुद्धिमान विवेकी चित्र में ही नहीं अटकते, वे चरित्र को महत्व देते हैं।

वे ही पुण्यवान सद्गतिशील मानव हैं जिसका चरित्र सुन्दर है।

आरम्भ में चरित्र का परिचय उसके चित्र में नेत्रों द्वारा तीक्ष्ण दृष्टि वालों को मिलता रहता है, जो स्वयं चरित्र के सुन्दर होते हैं।

इसीलिए उनकी दृष्टि अंतर हृदय को देखने वाली होती है।

विवेकी गुरुजनों की यही सम्मति है कि यदि तुम जीवन में प्रगति, उन्नति, सद्गति चाहते हो तो बाहरी आकृति को ही न सजाते रहो, आन्तरिक जीवन को भी आरम्भ में सदाचार, शिष्टाचार द्वारा तथा मध्य में सेवा और दोषों के त्याग द्वारा अन्त में शुभ सुन्दर के दान और प्रेम पूर्णता प्राप्त कर लो।

जिस प्रकार वृक्ष की अच्छी जाति का होनहार होता है उसके पत्ते प्रारम्भ से ही सुन्दर चिकने निकलते हैं, उसी प्रकार जो होनहार उत्तम कोटि के मनुष्य होते हैं, वे बाल्यकाल से ही उत्तम स्वाभाव के, सरल विनम्र, मधुरभाषी आज्ञाकारी हुआ करते हैं, वही उपदेश के सुपात्र हैं।

महान पुरुषों, गुरुजनों के जितने उपदेश, आदेश, संदेश, निर्देश हैं, वह बुद्धिमान व्यक्तियों के लिए ही हैं, पशु-पक्षियों के लिए नहीं। किसी पशु को बांधकर कुछ सिराया जा सकता है, उससे काम लिया जा सकता है किन्तु किसी गधे को, बैल गो, घोड़े, हाथी, शूकर को धर्मोपदेश नहीं दिया जा सकता। पशु को बांधकर काम लिया जा सकता है, विद्वान नहीं बनाया जा सकता; क्योंकि मानव की भाँति पशु को बुद्धि तथा वाणी नहीं मिली है। सृष्टि के रचयिता ने हम सबको जीवन तथा कर्म करने के साधन एक समान दिये हैं।

पाँच तत्वों को बनी देह और इन्द्रियों के द्वारा विषयों का सुख पशुओं को भी सुलभ है, परन्तु संसार में विघाट ययन तथा सद्शिक्षा को ग्रहण करने के लिए मानव जाति को ही बुद्धि मिली है। पशु कर्माभ्यासी बन सकता है, विद्वान नहीं। मनुष्य ही बुद्धिमान, विद्वान, विवेकी, कर्तव्यनिष्ठ, पुण्यात्मा, महात्मा होकर परमात्मामय हो सकता है।

मनुष्य तभी तक पशुओं के समान भोजन, भोग और नीद के लिए कामी, क्रोधी, ईर्ष्यालु, द्वेषी, बना रहता है, जब तक सच्ची शिक्षा प्राप्त नहीं करता। तन से, वाणी से, मन से, किसी प्रकार पाप न करना और शक्ति, योग्यता द्वारा पुण्यों को संचित करना यही सभी ज्ञान प्राप्त गुरुजनों की शिक्षा है। पाँच पाप शरीर से होते हैं -

1) हिंसा 2) चोरी 3) व्यभिचार 4) अकड़ कर चलना 5) व्यर्थ चेष्टा में शक्ति नष्ट करना।

पाँच पाप वाणी से होते हैं - 1) झूठ बोलना 2) पर निन्दा 3) कठोर वचन कहना 4) व्यर्थ पर चर्चा करना 5) अपने मुँह अपनी बड़ई।

पाँच पाप मन से होते हैं - 1) पराये धन की इच्छा 2) दूसरों का अनिष्टा चिन्तन 3) तृष्णा कभी न तृप्त होने वाली धन, भोग, मन आदि की इच्छा 4) क्रोध 5) अज्ञान में कर्ता, भोक्ता अहंकार।

जो विद्वान अपने जीवन को अशुभ असुन्दर से बचाकर शुभ से सजाकर सुन्दर रूप में देखना चाहता है। उपरोक्त पन्द्रह पापों से बचकर मानवता में दिव्यता लाने के लिए पन्द्रह पुण्यों को पूर्ण करता है।

देह से होने वाले पाँच पुण्य

1- प्राणियों की रक्षा तथा यथाशक्ति सेवा करना, 2- जिस सम्पत्ति के द्वारा सुख भोगा जाता है। उससे कुछ दान करना, 3- सदाचार शिष्टाचार को सावधानी से पूर्ण करना, 4- कर्तव्य कर्मों में श्रमी रहना, 5- वीर्य रक्षा से शरीर को पुष्ट रखना।

वाणी से होने वाले पाँच पुण्य

1- मधुर प्रिय सत्य बोलना, 2- दूसरों के गुणों की चर्चा करना, 3- सम्यक हितकर वचन बोलना, 4- किसी के शुभ कर्म की प्रशंसा करना, 5- परमेश्वर की महिमा गान करना।

मन से होने वाले पाँच पुण्य

1- प्रिय वस्तु के दान में उदार होना, 2- सर्वस्व के दाता प्रभु को ही अपना मानना, 3- जो कुछ जितना मिला है उसी में प्रसन्नतापूर्वक संतुष्ट रहना, 4- अपना अनिष्ट चाहने वाले को क्षमा करना, 5- प्रभु के नाते सभी का हित चाहना।

पाप का फल भोगकर नरक से लौटने वाले जीव पूर्व संस्कारवश पुनः पाप के ही अभ्यासी देखे जाते हैं और पुण्य का फल भोग कर स्वर्ग से लौटने वाले पुण्यात्मा आरम्भ से ही पूर्व संस्कारवश पुण्य कर्मों के ही अभ्यस्त होते हैं।

इस प्रकार की उत्तम प्रेरणा का प्रभाव पड़ता है। वे पापों का त्याग कर पुण्यों का सञ्चय करते हैं।

पतन के लक्षण

जो व्यक्ति क्षणिक सुखासक्तिवश व्रत में दृढ़ नहीं रहता।

जो अभिमानी मूढ़ता वश अपने दोषों को नहीं देखता।

जो सत्य का न्याय का, पक्ष न लेकन अन्याय करता है।

जो विद्याध्ययन की अवधि में ही किसी व्यक्ति में आसक्त हो जाता है। जिसमें सहिष्णुता नहीं होती।

जो इन्द्रियों को वश में नहीं कर पाता।

जो अशान्त रहता है। जिसका मन के साथ ही तन भी रोगी हो जाता है, वह युवावस्था के आरम्भ से वृद्धावस्था तक यथोचित उन्नति प्रगति सद्गति से वञ्चित रह जाता है।

अध्ययनशील बुद्धिमानों से निवेदन है, चाहे तुम बालक हो या युवक हो, अभी से दोषों के त्याग का दृढ संकल्प करो। साहस बटोर कर उत्साह के साथ शुभ की सिद्धि एवं अशुभ की निवृत्ति के लिये सदा प्रयत्न करते रहो-तो इस समय आप बहुत कुछ सार्थक कर सकते हो। शक्ति क्षीण होने पर, रोगी होने पर, उन्नति न कर सकोगे। श्रद्धापूर्वक अपने से अधिक श्रेष्ठ गुणवान, विद्वान, शीलवान, सचरित्रवान का नम्रतापूर्वक आश्रय लो।

जीवन को सुन्दर बनाने वालों के लिए यही गुरु सम्मति है कि यदि तुम मिली बुद्धि का सदुपयोग अपने हित के लिए कर सकते हो तो अपने को पापों से बचाने के लिए दुश्चार से बचते रहो और अपने को पुण्यवान बनाने के लिए सदाचारी बने रहो और आचार्य का आश्रय लो, जो सदाचारी है वही आचार्य है।

यदि दुर्भाग्यवश किसी तुच्छ सुख के लालचवश तुम कुसंग से घिर गये हो, किसी दुर्व्यसन, कूटेव की दासता से बंधे हुए हो तो होश के साथ जोश में आकर, कुसंग को छोड़कर सुसंगति में आ जाओ और दुर्व्यसन अथवा बुरी आदत न दुहराने का दृढ संकल्प करो।

किसी शुभ संकल्प में दृढ रहने के लिए शक्ति की आवश्यकता है जो शुभ संकल्प में दृढ रहते हैं वही वीर हैं, वह सर्वत्र विजयी होंगे। जो दृढ संकल्प से विचलित हो जाते हैं, वे कायर हैं, शक्तिहीन हैं, वही कायरता छोड़े बिना सर्वत्र पराजित होते रहेंगे।

शक्ति सम्पन्न होने के लिए संयम की आवश्यकता है। शक्ति के प्रवाह को अपने वश में मर्यादित रखने को संयम कहते हैं।

संयम में दृढ रहकर शक्ति सम्पन्नता प्राप्त करने के लिए तुम व्यर्थ बात न करो, किसी की व्यर्थ बातें न सुनो, व्यर्थ भ्रमण भी न करो, भविष्य की चिन्ता भी न करो, जितनी शक्ति को व्यर्थ से बचा सको, उसी के द्वारा सार्थक की पूर्ति करते रहो।

जो शुभ है, आवश्यकता है, जिससे विद्या बढ़ती है, जानकारी बढ़ती है योग्यता बढ़ती है, जिससे पुण्य तथा सद्गुण बढ़ते हैं, शक्ति के रहते वही करना संयमी सदाचारी का दैनिक कर्तव्य है।

संयमी रहकर ही तुम नियम का पालन कर सकते हो। नियम में तत्पर रहने वाले को अधिकारी की सिद्धि मिलती है।

जो व्यक्ति आलसी, प्रमादी, दुर्व्यसनी, विलासी, सुखासक्त है, वही अनियमित है, असंयमी है।

अध्ययन करते हुए, सेवा करते हुए, प्रार्थना उपासना करते हुए, जो किसी वस्तु से अथवा किसी व्यक्ति से प्रभावित न हो, वही संयमी है।

संयम ही देवी सम्पत्ति प्राप्त करने की साधना है, यही परम शुभ है। असंयम ही विपत्ति का कुपथ है, यह महा-अशुभ है।

शरीर के हस्त, पैर आदि विविध अंगों को संयम में रखने से व्यर्थ चेष्टा की आदत नहीं बनती उसी शक्ति से सार्थक कार्य पूर्ण होते हैं।

वाणी को संयम में रखने से व्यर्थ-वार्ता पर निन्दा आदि पाप नहीं बनते, सुन्दर बोलने की कला आती है।

मन को संयम में रखने से शुभ संकल्प की पूर्ति के लिए शक्ति सञ्चित होती है। जो मन, भोग-सुखों में तथा पाप प्रवृत्ति में लगाने से घोर पतन देखना होता है उसी मन को शुभ सुन्दर सत्य की दिशा में मोड़ देने से सद्गति एवं परम शान्ति हो जाती है।

संयमी पुरुष की बुद्धि तीव्र दूरदर्शी होती जाती है। असंयमी का शरीर कहीं होता है, आँखें कहीं देखती, पैर हाथ कहीं काम करते हैं और मन कुछ और ही मनन करता है। असंयमी प्रायः वर्तमान में सावधान नहीं रह कर भूत या भविष्य का मनन चिन्तन करता रहता है इसीलिए वर्तमान में जो कुछ विधिवत् करना चाहिये, जो कुछ ध्यान से देखना चाहिए या सुनना चाहिए अथवा समझना चाहिये वह सब कुछ यथोचित रूप में नहीं कर पाता।

असंयमी की स्मृति-शक्ति दुर्बल होती है, वह भूलता बहुत है, इसीलिए प्रायः हानि, असफलता, अनादर का दुःख

भोगना पड़ता है।

अध्ययन करने वालों से यह गुरु सम्मति है कि यदि तुम को स्मृति शक्ति बढ़ानी हो तो संयम के लिए सावधान रहो, जो कुछ वर्तमान में कर रहे हो उसे पूरा मन लगा कर करो।

किसी वस्तु को उठाते हुए आँखों से देख लो। कोई सामान खरीदते हुए आँख से देखते रहो, किसी दुकानवाले की बातों पर विश्वास न करो, स्वयं बुद्धिपूर्वक देख लो।

कोई-कोई फल बेचने वाले तुम्हारे सामने फल तोलते हैं कभी चालाकी से अच्छा फल गिरा देते हैं, उसके बदले में दागी खराब फल मिला देते हैं, झोले में भरते-भरते बदल देते हैं घर आकर जब कभी दृष्टि पड़ती है तब पश्चाताप करना पड़ता है।

असावधानी होते ही चित्त की व्यग्रता में लोगों की जेब कट जाती है, यात्रा करते हुए गाड़ी से समान उतर जाता है, रात को सो जाने पर चोर मनचाही वस्तु उठा ले जाते हैं।

तुम संयम के द्वारा शरीर को साधो, इन्द्रियों को साधो, मन को साधो, बुद्धि स्थिर करो तभी शुभ की सिद्धि और सुन्दर की प्राप्ति होगी। जो संयमी साध लेता है वही साधक साधु होता है।

दैनिक चर्चा व्यवस्थित रखने के लिए गुरु आदेशानुसार जो नियम हैं, उन्हें पूर्ण करने में प्रमादी, आलसी कदापि न बनो।

रात को भले ही जल्दी सो जाओ परन्तु प्रातः जल्दी उठ जाओ। उठने में आलस्य का पक्ष न लो।

शौच जाने के प्रथम ही ताजा जल एक-दो गिलास पी लो। जल पीने से कई लाभ होते हैं।

जिस प्रकार स्वच्छता के लिये जहाँ तक अँगुली जाती है, वहाँ तक मुँह के भीतर का मैल अँगुली द्वारा साफ कर लिया जाता है उसी प्रकार शौच क्रिया के पश्चात् गुदा-द्वार का मैल साफ करना मनुष्य के लिए बहुत ही लाभप्रद है, पशु बेचारा ऐसा नहीं कर सकता।

शौच शुद्धि के पश्चात् तीन बार मिट्टी लगाकर मल कर अँगुलियाँ शुद्ध करना चाहिए।

स्नान करते हुये साबुन न लगाकर खुरदरे तौलिये से रगड़ कर शरीर शुद्ध करो। परन्तु आदत को बदलना कठिन है।

नियमपूर्वक पेट के कुछ आसन अथवा व्यायाम भी अवश्य करो।

भोजन खूब चबाकर करो जल्दी भोजन करने से पोषकत्व कम मिलता है और दाँतों का काम आँतों को करना पड़ता है, इससे हानि होती है।

भोजन करते समय एक-दो घूँट जल भले पी लो परन्तु अधिक जल पीना स्वास्थ्य विधान के विपरीत है। दिन भर में दो-दो-सेर पानी पीना चाहिए।

भोजन के एक घण्टे में जल अवश्य पी लो।

एक बार भोजन करने के पश्चात् पाँच-छे घण्टे के बीच में कुछ खाने से विकार सञ्चित होता है, वही कुछ समय बीतने पर रोगी बना देता है।

मल-मूत्र के वेग को न रोको। सूर्य के सम्मुख होकर मूत्र त्याग न करो।

भोजन के पश्चात्, अधिक श्रम करने के पश्चात् तथा जुकाम हो जाने पर, ज्वर होने पर स्नान न करो। भोजन करने के पश्चात् कुछ क्षण बैठकर आठ श्वास, चित्त लेटकर लो, सोलह श्वास दाहिनी करवट लेटकर लो और बत्तीस श्वास बायीं करवट लेटकर लो, फिर काम में लग जाओ।

आठ सोलह बत्तीस श्वास लेने के नियम की ढाई-तीन मिनट में पूर्ति हो जाती है। आलस्यवश इस नियम की उपेक्षा न करो।

यदि आप बुद्धिमान हो, अपना हित चाहते हो, तो सुख में आसक्त मन की बात न मानो, जो हितकर हो वही करो। जब तुम्हें कोई मान दे, कुछ अधिकार दे, प्यार पूर्वक कोई अच्छी वस्तु दे, तुम्हारी सेवा करे, तब तुम लेने में संकोच करो किन्तु यही सब दूसरों को देते हुए कृपण न बनो, उदारतापूर्वक दो।

जब तुम्हारी बुद्धि कर्तव्य-अकर्तव्य का निर्णय न कर सके तब अनुभवी, विवेकी, धर्मानिष्ठ विद्वान की सन्मति लेकर कार्य करो।

उद्दण्ड, अश्रद्धालु, अभिमानी, कठोर हृदय वालों को श्रेष्ठ विद्वान, साधु, सदाचारी दीखते ही नहीं।

हास्य परिहास में तुम भी किसी को कटु वाक्य, अप्रिय सत्य अथवा व्यंग वचन न कहो।

किसी उद्दण्ड अभिमानी क्रूरकर्मी हिंसक, मूर्ख, अभक्ष्य-भक्षक अथवा जिसके शत्रु अधिक हों, उससे मित्रता कदापि न करो, उनसे शत्रुता भी न करो। प्रारब्धवश ऐसे व्यक्ति के संग रहना पड़े तो उसके सामने शब्दों द्वारा मान ही दो किसी प्रकार निर्वाह करो, शान्त सहिष्णु बने रहो।

तुम जितना अधिक पापों से बचने के लिए और पुण्य सञ्चय के लिए सावधान रहोगे उतना ही अधिक असावधानी से भूल हो जाने का, अपराध बन जाने का पश्चात्ताप होगा।

अधम मनुष्य वह है जिसे भूल का या पाप प्रवृत्ति का ज्ञान ही नहीं होता। मध्यम मनुष्य वह है जिसे भूल बन जाने पर, अपराध हो जाने पर, तत्काल ज्ञान हो जाता है और पुनः उस पाप अपराध अथवा भूल को न दोहराने का संकल्प करता है। उत्तम बुद्धिमान मानव वह है, जो भूल करते हुए अथवा पाप अपराध होने के प्रसंग आने पर, प्रथम से ही सावधान हो जाता है और वह अपराध पाप नहीं होने देता।

यदि तुम्हारी असावधानी से, आलस्य से या अपनी इच्छा पूर्ति के सुख का पक्ष लेने से, दूसरों में किसी प्रकार का शोभ या विकार उत्पन्न होता है, दूसरों को कष्ट होता है, उसके सुख में बाधा पड़ती है; तो यह तुम्हारे द्वारा अपराध ही माना जायेगा।

तुम इतनी ध्वनि से न बोलो, इतनी तीव्रगति से किसी के बीच में नहीं चलो, ऐसा हास्य-विनोद न करो, जिससे दूसरों की सुविधा में बाधा पड़े, उन्हें अशान्ति हो जाये।

किसी के सामने खड़े होकर दातुन नहीं करो। किसी के निकट होकर नहीं थूको। अनेकों धर्मशालाओं में जाकर देख सकते हो कि वे मनुष्य ही हैं, जो दीवारों पर थूकते हैं जहाँ-तहाँ पेशाब कर देते हैं। पेशाब करने के स्थान में पहले पानी डालकर फिर पेशाब करने के पश्चात् पानी डालना चाहिये, यह भी नहीं करते। यदि तुम भी ऐसा ही करते हो तो अभी से इस भूल को सुधार लो।

तुम दीवारों में, मन्दिरों में, धर्मशाला में, शौचालयों में कोयला, खड़िया, पेन्सिल से व्यर्थ अपवित्र बातें न लिखो। नीच प्रकृति के लोग ही गब्दी अनुपयुक्त बातें लिखते हैं।

बढ़ी हुई नदी में, वन में, बिना मार्ग की चढ़ाई में, दुःसाहस न करो।

नींद टूटने पर, व्यर्थ आलस्यवश न लेटो। पूरी नींद सो लो। अधिक जागरण न करो।

दौत वाले, सींग वाले पशुओं से तथा ओस से अथवा सामने की हवा से एवं धूप से और जल से भीगी-गीली भूमि से, सावधान रहकर, दुष्परिणाम को देखो और बचो।

विद्वान से, अधम व्यक्ति से और उत्तम पुरुषों से विरोध न करो।

कलह को, बैर को, अग्नि की चिनगारी को, किसी दोष को, दुर्व्यसन को, चोरी को, रोग को, कुसंगति को, ऋण को, असावधानी को, थोड़ा समझकर, लापरवाही, उपेक्षा न करो।

नारी की मधुर बातों से, उसके आँसुओं से, शत्रु के सम्मान से, स्वार्थी की से मोहित होकर धोखा न खाओ, सावधान रहो। माता, पिता, गऊ, गंगा, गुरु को उठते ही प्रत्यक्ष में या मानसिक प्रणाम कर लो। गुरुजनों को ऐसा दण्डवत्-प्रणाम या चरणस्पर्श न करो जिससे कि उन्हें बाधा हो।

जहाँ पर जाना मना लिखा हो, पेशाब करना मना लिखा हो, थूकना मना लिखा हो, जहाँ पर ध्वनि करने का निषेध है, जहाँ फल-फूल तोड़ना मना लिखा हो, तुम यदि सभ्य हो, तो वह काम न करो जो मना किया गया है। अनेकों युवक ऐसी जाति के होते हैं, जो लिखे हुये के विरुद्ध ही करते हैं, वे लिखे हुये को मिटाने की चेष्टा करते हैं। कहीं-कहीं उल्टा ही लिख देते हैं। तुम यदि यथार्थ मानव हो, तो किसी भी नीच प्रवृत्ति की नकल न करो। किसी के सत्कार्यों का अनुकरण करो।

जिस कर्म से दूसरों की भावना भी दूषित हो, किसी के कष्ट हो या असुविधा हो, घृणा हो, वह कदापि न करो। यदि कोई मनुष्य अपनी आदत के अनुसार नहीं क्षति पहुँचा रहा हो, कहीं अनाधिकार रूप में स्थान को दूषित कर रहा हो, तो उसे नम्रता-पूर्वक मना करो। इगड़ न करो यदि न माने तो उस क्षति को, तुम सम्हाल सकते हो अवश्य सम्हाल दो। एक बार महात्मा गाँधी रेलयात्रा में थे। किसी ने वही पर थूक दिया। महात्मा गाँधी ने अखबार के टुकड़े से पोंछकर बाहर फेंक दिया-यह विशाल हृदय का परिचय है। कदाचित्तुम ऐसा नहीं कर सकते, फिर भी किसी अभिमानी मूर्ख का अनुकरण तुम न करो। एक अंग्रेज का बालक मूंगफली खाकर छिलका गाड़ी के बाहर फेंकता जाता था क्योंकि उसे ऐसी ही शिक्षा दी गई थी।

स्वच्छता सम्बन्धी निषेधात्मक आदेशों को प्रायः अंग्रेज लोग तो मानते हैं, वह लोग भूल नहीं करते। परन्तु अनेकों

भारतीय, मूर्ख, अशिक्षित बालक ही नहीं, गँवार-देहाती ही नहीं बल्कि शिक्षित युवक वृद्ध भी नियम, आदेश, निषेध-विरुद्ध वही काम करते हैं-जो मना लिरा होता है। यह पशु-प्रकृति के लक्षण हैं। अनेकों व्यक्ति अज्ञानवश मूर्खतावश भूल करते हैं। अनेकों व्यक्ति अधिकार के मद, विद्या-वैभव के मद में, उन्मत्त रहकर, निषेधात्मक कर्मों को दोहराते रहते हैं।

कई भी व्यक्ति इसलिए

गलत

भूल कर

आदतें पड़ गई हैं। अधिकतर तो माता-पिता शिक्षक स्वयं ही सदाचार में तत्पर नहीं हैं, वह स्वयं ही आलसी विलासी प्रमादी तथा कर्तव्य विमुख हैं, वे अज्ञान में ही अधिकार का भोग कर रहे हैं।

पाठक वृद्ध यदि सावधान हो सके, तो सदाचार पालन में, दुराचार के त्याग में, पराधीनता नहीं है।

देखो ! इस देह के, इंद्रियों तथा प्राणों के पीछे मन के पीछे बुद्धि है, उसके पीछे चेतन तत्व है। उसी में 'हम' अथवा 'मैं' का अभिमानी यह अहंकार ही जीवात्मा है।

मुझमें सद्गुण कितने अंश में है ? और दुर्गुण कितनी मात्रा में है ?

यह भी देखो कि परस्पर व्यवहार में जो कुछ दूसरों से मान, प्यार, अधिकार तथा सुख लेना चाहते हो उसे ही, देते कितना हो ?

यदि जीवन को सुन्दर बनाना है और सुख के अन्त में आने वाले दुःखा-भोग से बचना है तो दुराचार को कहीं स्थान न दो, सदाचार का ही परिचय देते रहो।

स्मरण रखना ! जैसा व्यवहार बताव, तुम दूसरों से अपने प्रति नहीं चाहते हो, वही दुराचार है।

जैसा व्यवहार बताव तुम दूसरों से अपने प्रति चाहते हो वही सदाचार है।

यदि तुम विचारपूर्वक देख सकते हो तो अभी देखो ! तुम्हारे साथ देवी अंश जहाँ कहीं जाग्रत है, वह तुम्हें दोषों के त्याग में, शुभ वस्तुओं तथा धन के दान में और स्वयं निष्काम प्रेम में रहते हुए, आनन्द का अनुभव होगा, किसी की अपेक्षा नहीं होगी। तुम्हारे साथ आसुरी अंश के जाग्रत रहने में, संग्रह करते हुये, दूसरे से मान पाते हुये, किसी का अधिकार छीनते हुए, सुख की प्रतीति होगी। पाप प्रवृत्ति का भान भी न होगा।

आसक्त होकर उसके संयोग में, अथवा अन्य मन के अनुकूल भोग-विलास में, तृप्ति मानोगे तब तो पशुता को ही प्रबल बनाते रहोगे।

यदि तुम अहंकार को धन और मान से तृप्त करना चाहोगे, तो आसुरी प्रकृति की ही प्रधानता रहेगी।

यदि तुम मानवता की जागृति में दिव्यता को उतारना चाहते हो, तब तो तुम्हें आरम्भ से ही साधना का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि साधना द्वारा ही सेवा पूर्ण होती है। सेवा की पूर्णता में दिव्यता उतरती है।

सेवा की पूर्णता के लिए शरीर श्रमी, मन संयमी, हृदय उदार, बुद्धि-विवेकपूर्ण और अहंकार, राग, द्वेष, ईर्ष्या, मोह अभिमान-शून्य होना चाहिए।

सभी विकारों से रहित और निष्काम होकर सेवा धर्म को पूर्ण करना दुष्कर है। फिर भी तुम अपने से अधिक विद्वानों का, सद्गुण-सम्पन्न आदर्श सज्जनों का सुसंग करो। देखो ! संग के परिणाम से मिट्टी फूल बन जाती है, मल-मूत्र दुर्गन्धित गन्दगी खाद बनकर, सुगन्ध में परिणत हो जाती है।

दुःख

जीवित से

जिस दोष को हटा नहीं सकते, जिस दुरता को, नीच वृत्ति को तुम रोक नहीं सकते, उसी के गुनाम हो, दास हो, फिर भी दूसरों के सामने अभिमानवश अकड़ते हो, तो कितनी बड़ी मूर्खता है।

किन्तु मूर्ख को समझाना पत्थर में कीला गाड़ना है। मूर्ख और मुर्दा ही अपने विचार नहीं बदलते।

जो विद्वान् अपनी मूर्खता से अशान्त होता है, वही मूर्खता का त्याग कर देता है; और विवेक में जाग्रत होकर प्रेम को पूर्ण करता है, सेवा करते हुए अपना सौभाग्य समझता है।

मनुष्य के भीतर जो कुछ अधिक होता है वही दूसरों को देता है। निरीक्षण करो ! तुम दूसरों को प्रिय देते हो या अप्रिय ! जो कुछ तुम्हारे भीतर अधिक मात्रा में होगा वही निकलेगा।

तुम मूढ़ता, प्रमादवश, भले ध्यान न दो परन्तु परिणाम दर्शी गुरुजनों का यह अनुभव सत्य ही है कि जो कुछ दूसरों के साथ भला-बुरा करोगे वही तुम्हारे साथ भी होगा।

तुम किसी से ईर्ष्या-द्वेष न करो, क्रोध में होकर किसी को कठोर वाक्य न कहो, अपमान न करो, किसी से घृणा न करो, धनमद में विद्यामद, अधिकारमद, कुल-मद, बल-मद, में उन्मत्त होकर, किसी को दुःख न दो। किसी

को दुः ख पहुँचाकर, तुम्हें जो सुख मिलेगा उसका अन्त कभी न कभी दुः ख में ही होगा ।

किसी प्रकार के बलमद से अब्धी बुद्धि द्वारा यह समझ में नहीं आता कि अपने बड़ों को, गुरुजनों को प्रणाम करने से, उन्हें जो प्रसन्नता होती है, वह शुभाशीर्वाद का काम करती है। बड़ों को नमन करना, मान देना सहज शुभ कर्म है।

तुम्हारी शुद्ध-बुद्धि में यदि यह बात लाभप्रद दीखती है तो अवश्य बड़ों को प्रणाम करो। गुरुजनों की सेवा में आलस्य न करो। मान देना भी श्रेष्ठ दान है।

जब तुम्हारे साथ कोई ईर्ष्या-द्वेष, क्रोध-युक्त बर्ताव करे तब तत्काल तुम भी उसी की भाँति उत्तेजित न होकर धैर्य के साथ गम्भीरता-पूर्वक परिणाम पर विचार कर लो।

क्रोध ऐसा हथियार है जो पहले अपने चालक को घायल करता है और यह उसी स्थान को जलाता है, जहाँ प्रगट होता है।

आसुरी वृत्तियाँ जहाँ जागती हैं वही तपाती हैं, जलाती है।

तुम अपनी इच्छाओं को जितना अधिक बढ़ते जाओगे उतना ही वस्तुओं व्यक्तियों की दासता में बँधोगे।

निर्वाह मात्र का पक्ष लो। कुछ धन बचा कर निर्धन-विद्यार्थी की आवश्यक सहायता करो।

शीत से पीड़ित व्यक्ति को वस्त्र दो। भूखे-प्यासे अतिथि को अन्न-जल देकर सन्तुष्ट करो। निर्बल व्यक्ति को उसकी आवश्यकता समझ कर सेवा कर दो, दुः खी व्यक्ति को सान्त्वना दो, भयातुर की रक्षा करो।

किसी कष्टित को सुविधा देकर कष्ट को कम करो। यात्रा करते हुए दूसरे यात्री को अपने ही समान अधिकारी सम्झकर सहायता दो।

यदि लोभी हो या धनहीन हो, आलसी या बलहीन हो तब भी वाणी से मधुर शब्दों द्वारा मान देकर, छोटों को प्यार देकर ही पुण्य के भागी बनो। मान देने से कुछ घटेगा नहीं।

किसी प्रतिष्ठित अथवा पदाधिकारी पुरुष के समीप या प्रतिष्ठित सन्त-महात्मा के समीप अधिक कार्य में व्यस्त रहने वाले विशिष्ट पुरुष के समीप, आवश्यकतानुसार समय लेकर जाओ।

शिक्षित मूर्ख बहुत हैं पर अनुभवी विद्वान् बहुत कम मिलते हैं।

मूर्ख केवल धन की, सुखोपभोग की एवं मान की और नाम ही की तृष्णा की पूर्ति चाहता है, जीवन के लक्ष्य का ज्ञान ही नहीं है।

मनुष्य इसीलिए असत्-पथ में है क्योंकि सद्शिक्षा नहीं मिल रही है और सद्शिक्षा इसीलिए सुलभ नहीं है क्योंकि प्रायः सद्शिक्षक भी कहीं बिरले ही हैं। यदि सद्शिक्षक भी सुलभ हो जाये तब शिक्षार्थी विद्यार्थी का सुपात्र होना आवश्यक है, इसी की कमी है।

विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने वाला यदि आलसी है, गलत को ही सही माननेवाला प्रमादी है, यदि उसे माता-पिता के धनी होने काया उच्चपदाधिकारी होने का, कुल का, बल आदि का अभिमान है, यदि बलों का दुरुपयोग, ईर्ष्या-द्वेष, क्रोध-कलह में करता है, यदि वह असंयमी है, दुर्व्यसनी है, कहीं आसक्त है, शरीर से रोगी है तब वह शिक्षा एवं विद्याध्ययन के लिए सुपात्र नहीं है फिर भी यदि मानवी अंश कुछ भी जाग्रत हो जाये तो सुपात्र हो सकता है।

जो विचारवान युवक व्यर्थ-अनर्थ से एवं चिन्ता से, समय को शक्ति को, बचा लेता है, जो अपने दोषों को निष्पक्ष बुद्धि से देखता है, जो किसी रूप में, शब्द में तथा वस्तु व्यक्ति में आसक्त नहीं है, जो कष्ट सहिष्णु है ब्रह्मचर्य-व्रत पालन में तत्पर है, जो विनम्र शान्त स्वभाव वाला है, जो शिखरक में श्रद्धा एवं पूज्यभाव रखता है और आज्ञापालन करता है, जिसे अध्ययन में उत्साह है, वही सुपात्र है।

जो कोई इस गुरु-सदेश को पूर्णतया पढ़ लेका और अपने स्वयं का अध्ययन करते हुए जो कुलक्षणों को देख लेगा और सुपात्रता के सुलक्षणों को देखकर गौरवान्वित न होगा, वह सदाचारी सज्जनों के संग से शीघ्र ही शुभ-संकल्प करते हुए सुपात्र हो सकता है।

मनुष्य को अहंकार में घिरा रहने के कारण भले ही ज्ञान न हो फिर भी उसका अनन्त शक्ति से सम्बन्ध है और उसी शक्ति से प्रत्येक संकल्प को पूरा करता है।

जिस शक्ति से अशुभ संकल्प पूरे होते हैं उसी के द्वारा शुभ-संकल्प भी पूरे होते हैं इसीलिए जो दुराचारी दुर्व्यसनी हैं वही सदाचारी संयमी हो सकता है। जो पशुमय है वही मानव प्रभुमय हो सकता है। जो कृपण कठोर

हिंसक है वही सुसंग द्वारा शुभ-संकल्पवान होकर उदार विनम्र प्रेमी अहिंसक बन सकता है।
अनेकों उपदेशक मनुष्य-देह की बड़ी महिमा बताते हैं मनुष्य जन्म मिलना दुर्लभ सिद्धि करते हैं, यह यथार्थ भी है, परन्तु प्रायः देखा जा रहा है कि पशु-पक्षी से इतने पाप अपराध नहीं बन रहे हैं, जितना अनेकों मनुष्यों से बन रहे हैं। क्योंकि मनुष्य, पशु की भाँति बलवान तो नहीं है परन्तु बुद्धिमान है और कदाचित् शिक्षित भी है। शिक्षित मनुष्य जितनी चतुराई से छल-कपट, दम्भ-पारखण्ड द्वारा अपनी कामना वासना की पूर्ति कर लेता है। उतनी चतुरता अशिक्षित में नहीं होती। इसलिए मनुष्य की देह पाना, बुद्धिमान होना महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि महान बुद्धिमानों, विद्वानों को कहीं-कहीं असुर एवं राक्षस कहा जाता है।

मानव जन्म तभी महत्वपूर्ण सिद्ध होता है जब शिक्षा सेवा सत्य शान्ति प्रेम की पूर्णता के लिए हो। जो शिक्षा अथवा विद्या धनोपार्जन के लिए है, अधिकार प्राप्ति के लिए है, महत्वाकाँक्षा की तृप्ति के लिए है, जिस शिक्षा द्वारा शोषण होता हो, निर्बलों-दलितों का दमन होता हो, जिसमें हिंसा सफल होती हो वह शिक्षा दानवता की है। मानवता में दिव्यता के अवतरण की नहीं है।

धर्मयुक्त मानव वही है जो धर्म का ज्ञाता भी हो और धर्म में हो। जो सेवा की व्याख्या ही न करता हो वरन् जिसका जीवन सेवामय हो। जिसका अहंकार ज्ञान से ही भरा न हो, जो अहंकार को ज्ञान में देखता हो, जो महत्वाकाँक्षा के ज्वर से अशान्त न हो, जो असत्य आत्मा में ही शान्त हो। जो दयालु हो, प्रतिकूलताओं में सहिष्णु हो गम्भीर हो, धैर्ययुक्त हो, विनम्र हो तेजस्वी हो ऐसे मानव में ही दिव्यता उतरती है।

जो सदाचार-शिष्टाचार में निपुण हो, मधुरभाषी हो। सेवा-सत्कार्यों में प्रफुल्लित रहता हो, सत्याग्रही हो, दुराग्रही न हो जो कर्तव्य-पालन में आलसी नहीं हो वही मानव धर्मनिष्ठ है। जो दूसरों को क्षमा करने में और दान में उदार हो। जो शक्ति को लेकर संयमित हो, शान्त हो।

इस देश में अनेकों आचार्य एवं महात्माओं के नाम प्रसिद्ध हैं। महात्मा गाँधी इसी कोटि के मानवता में दिव्यता अवतरण की विधि के शिक्षक हो चुके हैं। अध्यापकों को चाहिए कि इन्हीं से प्रेरणा प्राप्त करें।

सत्य की ओर से अर्थात् परमात्मा की दिशा से जो कुछ सद्गुण-सद्ज्ञान, सत्य-प्रेम प्राप्त हो सकता है उसकी प्राप्ति के लिए कोई भी वृद्ध या युवक या बालक भी एक समान अधिकारी है क्योंकि साधना एक समान है।

उस साधना की पूर्णता सेवा द्वारा, त्याग द्वारा और प्रेम द्वारा ही होती है। इस साधना की शक्ति उसी को सुलभ होती है जो अवकाश पाते ही शान्त होता है, शून्य होता है। केवल स्वयं की चेतना में जाग्रत रहता है।

सेवा वही शुभ सुन्दर है जिसके बदले में किसी प्रकार धन की, भोग की तथा मान की चाह न हो।

त्याग वही शुभ सुन्दर है जिससे दोषों का अन्त हो तथा अशान्ति का अभाव हो और उस त्याग का कोई अहंकार न हो।

प्रेम वही सर्वोत्तम है जिससे शुभ सुन्दर पवित्र का दान ही दान हो जहाँ लेने की कोई आवश्यकता ही न हो।

तुम अपने जीवन को पूर्ण सुन्दर निर्दोष देखना चाहते तो संयम के द्वारा शक्ति प्राप्त करो।

किसी कर्म का अन्त होते ही नया कर्म आरम्भ होने पूर्व शान्त होकर, शून्य रहकर जो स्वतः देह के भीतर रहा है उसे देखो। शरीर, इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि को देखते, देखने वाले स्वयं को देखो।

तुम किसी के द्वारा प्रेम चाहो नहीं और प्रेमकर्ता न बनो प्रत्युत प्रेम में होकर स्वतः ही होने वाले दान को उदारता नम्रता, सहिष्णुता आदि देवी-गुणों को देखते रहो।

आपका अनेकों व्यक्तियों से संग होगा कोई अनुकूल होगा, कोई प्रतिकूल होगा, कोई उदार होगा, कोई लोभी होगा, कोई प्रीति करेगा, कोई द्वेष-क्रोध में आकर कष्ट पहुँचायेगा।

आप सावधान रहकर देखिए ! लोभी को मोही की सुरासक्त की अभिमानी, ईर्ष्यालु, द्वेषी, क्रोधी की आलसी प्रमादी की मनः स्थिति कैसी है ?

वह कभी भयातुर, कभी चिन्तित-अशान्त है, सुरात्री है उन्मत्त है। उसके प्रत्येक सुख के पीछे दुःख लगा है। हर्ष के पीछे शोक लगा है। उसका लाभ तो हानि से घिरा है। उसकी दूसरों से मिलने वाली अनुकूलता, प्रतिकूलता से घिरी है।

दिव्य-शक्ति के योग के लिए अवसर मिलते ही शान्त होना, शून्य होना, प्रत्येक बालक, वृद्ध, युवक के लिए सरल है।

उसी से प्रत्येक गति का आरम्भ होता है। उसी में अंत होता है। उसी में संसार के समस्त कर्म चल रहे हैं, उसी

में सभी को विश्राम मिलता है। वह अखण्ड है, अनन्त है। उसका कोई नाम नहीं है, इसीलिए उसे, किसी नाम से पुकार सकते हो। उसका कोई रूप नहीं है, इसीलिए किसी भी रूप में उसे अनुभव कर सकते हो। वह तो वही उपस्थित है, जहाँ तुम हो।

वह शक्ति न हिन्दू है, न मुसलमान है, न जैन है, न सिक्ख है, न ईसाई है, न यहूदी है। वह तो सभी कुछ के पीछे, सत्ता के रूप में, जीवन के रूप में, चेतना के रूप में, ज्ञान-स्वरूप में विद्यमान है। शान्त एवं शून्य होते ही उसकी अनुभूति होती है।

किसी भी देह को अपनी न मानो। मोह-ममता न बढ़ने दो। अपने विनाशी शरीरों में, अविनाशी चेतन को प्रेम से स्मरण करो।

संसार में जन्म लेने के पश्चात् जो कुछ भी मिला है, उसके देने वाले दाता का सदा स्मरण करो। कृतज्ञ रहो। अभिमान न आने दो।

हम परमात्मा के हैं। सब कुछ परमात्मा का है। मेरा कुछ नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिए। यही शान्ति, मुक्ति, भक्ति के महामन्त्र हैं।

बार-बार मनन करो। संसार में अपना कुछ न मानना ही त्याग है। दाता प्रभु के प्रेम में भरे रहना अनुराग है। परम प्रभु प्रेम में ही प्रकट होता है।

अपने अविनाशी चेतन स्वरूप में बुद्धि स्थिर करो।

जब दुःख आये तो किसी को दोष मत दो। अपने दोष देखो। ऐसा कोई दुःख नहीं, जो अपने बनाये दोष के बिना होता हो।

तुम्हारे न चाहते जो आ जाये, उसे परमात्मा के विधान से आया जानकर, स्वीकार करो।

ज्ञान-स्वरूप दृष्ट जो कुछ भी देखता है, वह माया है। जो भी दृश्य दिखता है सब परिवर्तनशील है, बदलने वाला है। देखने वाला साक्षी, नित्य चेतन स्वरूप है। कर्त्ता-भोक्ता न बनकर, दृष्टा बनो। अज्ञान में मन से अपना माना जाता है। मान लेने से मोह, लोभ, अभिमान आदि दोष बढ़ते हैं।

अवसर मिलते ही शान्त न मौन हो जाओ। संकल्प और चाह से, शान्ति ढक जाती है, मौन टूट जाता है।

हमेशा सजग रहो। देखते रहो क्या हो रहा है ? कैसे होता है ? चेतन की निरन्तर अनुभूति ही उपासना है।

‘हम’ का बोध रहे, ‘हमारा’ याद न आये। यही चेतन-स्वरूप की स्थिति है। मैं हूँ मैं मेरा संसार में कुछ नहीं है।

शारीरिक, मानसिक, आत्मिक उन्नति के लिए सदाचार, सेवा और त्याग को जान लो।

प्रेम से, नम्रता से भरे रहो। पर-दोष देखने में श्रम न करो। समस्त दोष अहंकार में रहते हैं। समस्त सद्गुण, परमात्मा के हैं।

तुम श्रद्धावान् हो, गुरु-वाक्यों द्वारा आत्मवान् होकर रहे चेतन आत्मा अविनाशी है। विनाशी आकर अहं ज्ञान में भर गए हैं।

निरन्तर परमात्मा में ही, चेतन-स्वरूप आत्मा को नित्ययुक्त अनुभव करो। मेरा मानना ही बन्धन का कारण है। मन द्वारा संसार के सम्बन्ध माने हुए हैं, सुख-दुःख माने हुआ है और परमात्मा से दूरी मानी हुई है। यह मन की मान्यता, बुद्धि-विवेक द्वारा हटाई जाती है।

ज्ञान में देखने से माने हुये सम्बन्ध तथा माना हुआ सुख-दुःख का बन्धन नहीं रहता। परमात्मा प्रभु से मानी हुई दूरी मिट जाती है।

संसार में अपना कुछ न मानने से मुक्ति, आत्मा को परमात्मा से अभिन्न जानने पर भक्ति और चाह रहित होने पर शान्ति सुलभ रहती है।

देहाभ्यास को मिटाने के लिए अपने को नित्य मुक्त-स्वरूप जानना यह आत्माभ्यास आवश्यक है।

तुम रूपवान्, धनवान्, गुणवान् आदि कुछ भी न बनो। केवल चेतन-स्वरूप में बुद्धि स्थिर करो।

चाह-रहित होने पर विश्राम में ही स्वाधीनता तथा स्वाधीनता में ही प्रेम प्रकाशित होता है। चाह रहते स्वाधीनता नहीं मिलती। चाह सदा अपने से भिन्न पदार्थों की होती है।

देहाभिमान चाह-रहित नहीं हो पाता। ममता, मोह, लोभ, अभिमान आदि दोष, विनाशी पदार्थों को अपना मानने से ही बढ़ते हैं।

सुख्रासक्त स्वाधीन नहीं हो पाता ।

अपने सत् चेतन स्वरूप को जाने बिना पराधीनता तथा दुः खद् दोषों का अन्त नहीं होता ।

देह, इन्द्रियाँ तथा मन, बुद्धि आदि को अपनी मानने से ममता कामना, आसक्ति बढ़ती है।

ज्ञान द्वारा सावधान रहकर, बुद्धि-दृष्टिसे विनाशी में अविनाशी को देखो। मन से ममता छोड़ दो।

अपने सत्-चेतन स्वरूप को भूलकर, देहादि वस्तुओं को अपना मानना, दैनिक अपराध है। इस अपराध के कारण अनेक प्रकार के दुः ख भोगने पड़ते हैं।।

अपने पदार्थोंमें मन लगाए रखना पाप है। परमात्मा में लगाना पुण्य है। विनाशी पदार्थोंको चाहने वाला अशान्ति से, भय से, दुः ख से मुक्त नहीं हो पाता ।

प्रत्येक क्षण के पीछे शाश्वत् को देखो, गति के पीछे नित्य स्थिर को देखो, अणु के पीछे महान् को देखो। यही ज्ञान में दर्शन है।

स्मरणमात्र से ही परमात्मा सुलभ है। कुछ करना नहीं है। परमात्मा कुछ किए बिना ही नित्य प्राप्त है।

तुम्हें जो पकड़े हैं वह अविनाशी हैं। जिसे तुम पकड़े हो वह विनाशी हैं।

सीमित ज्ञान ही अहंकार है। असीम ज्ञान-स्वरूप आत्मा है।

संसार की विस्मृति में ही परमात्मा की स्मृति, और परमात्मा की विस्मृति में ही संसार की स्मृति है।

प्रेम परमात्मा के लिये, ज्ञान अपने स्वरूप के बोध के लिए, शक्ति सेवा के लिए हो, यही शान्ति, मुक्ति-भक्ति के लिये सुगम साधना है।

जो निरन्तर है ही, उसे पाने का कोई मार्ग नहीं। देखो ! निरन्तर क्या है ? देखने वाला पान-स्वरूप निरन्तर है।

परमात्मा अभी है, यही है, हम परमात्मा में हैं। लेकिन असत् का संग इस अनुभूति में बाधक है।

परमात्मा ही असत् के साथ सत् चेतन है। सुख के पार आनन्द है।

चाह-रहित, प्रयत्न-रहित, अकिञ्चन होकर ध्यान से चेतना में बुद्धि को स्थिर करो। दृष्टा चैतन्य ही सत्य है और सब कल्पना है।

परमात्मा को हम बिना कुछ किये ही प्राप्त कर रहे हैं किन्तु विमुख है। जब चाहें तभी सम्मुख हो सकते हैं।

चित्त के चिंतन-रहित होते ही चेतन आत्मा है। विनाशी नाम रूपों का मनन-चिन्तन ही अविनाशी चेतन के ध्यान में बाधक है। सजग सावधान रहकर विनाशी के मनन-चिन्तन से चित्त को हटाते रहो। इसीलिए अविनाशी का सुमिरन किया जाता है।

और बन्द करके भीतर शून्यता को देखो, विचार शान्त रहे, कोई याद न आये, तभी शाश्वत्, सत्-चेतन का बोध होता है।

में देह हूँ मेरी देह है, ऐसे देहाभिमानी की शुद्धि के लिए शास्त्र में कोई उपाय नहीं है।

अहंकार को प्रभु में समर्पित जान कर, प्रभु के विधान से सब कुछ होते देखो।

चेतन ही सत्य है, अहंकार और विचार के कारण बुद्धि आवरण में है। प्रभु को सर्वमय जानकर सब में प्रभु को प्रणाम करो।

सन्त कहते हैं कि अविनाशी ज्ञान-स्वरूप सत्-परमात्मा तो इसी क्षण में ही मिलेगा, असत् की सीढ़ी पार करने में बहुत समय लगता है।

इसी क्षण परम-चेतन का अनुभव करो। बार-बार करते ही रहो।

श्रद्धा वही सुन्दर है, जहाँ अहंकार समर्पित हो। जब तक मोह है, तब तक लोभ नहीं छूटेगा। सद्गुरु के भक्त वही हो पाते हैं, जो फल की आकांक्षा के त्यागी हैं, चाह से रहित हैं।

अहं-ज्ञान के साथ, मेरा कुछ न रहने दो। जो कुछ तुम्हें चेतन, प्रिय लगे, उसके साथ चेतन-तत्त्व का स्मरण करो।

अहं-ज्ञान के साथ, विनाशी आकर भरे रहना, पाप है। आकर रहित होना पुण्य है। परमात्मा ही सर्वमय है। इसी से सब कुछ प्रकाशित हो रहा है।

देहादि विनाशी आकारों को अपनाना मानो। सत्-चेतन आनन्द स्वरूप से चिपटे रहिये, भूलिये नहीं। बार-बार स्मरण कीजिए। जो बीत गया वह भूत-काल है, जो आगे आयेगा, वह भविष्य है।

बीता हुआ भूत न चढ़ने दो। आगे की चिन्ता करनेवाले प्रेत को हटाते रहो।

ध्यान करो नहीं, ध्यान से देखो। मन-बुद्धि के पीछे चेतन की उपासना करो। चेतन-स्वरूप से संतुष्ट, तृप्त होना योग्य होना है। चेतन का स्मरण योग है। केवल चेतना में ठहरो, तभी आसक्ति समाप्त होगी। वर्तमान के प्रति अन्धे न बनो। भूत-भविष्य का चिन्तन छोड़ो।

तार में विद्युत् की तरह चेतन परमात्मा व्याप्त है। यह बुद्धि रूपी बल्ब में ही, ज्ञानरूप से प्रकाशित होता है। अविदेकी जन, मनुष्य के बनाये हुए मन्दिरों में, भगवान को मानते हैं। भगवान की प्रकृति से बने हुए, देह-रूपी मन्दिर में नहीं पहचानते।

तुम्हें गुरुवाक्य-श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, तो इस देह को ही देवालय समझकर, इसमें चैतन्य देव महादेव शिव की उपासना करो। ब्रह्मर्षि वशिष्ठ जी ने समझाया है कि किसी भी साधना-आराधना, उपासना से जब वासना क्षय तथा परमात्मा का बोध और मनोनाश होता है, तभी परम-पद प्राप्त होता है। शान्त होकर, संकल्प-रहित होकर सोचो नहीं, प्रत्युत् जानो कि मैं निरन्तर नित्य चेतन स्वरूप हूँ, परमात्मा में हूँ। सत्-चेतन के सानिध्य का निरन्तर स्मरण ही सत्योपासना है। अपने साथ रहने वाले आत्मदेव से ही दोषानिवृत्ति के लिए प्रार्थना करो।

संसार की ओर जो चलता है, वही रागी है।

जो संसार की ओर पीठ कर लेता है, वही विरागी है।

निष्काम कर्ता फलेच्छ-अपेक्षा-रहित होता है। वही आनन्द का अनुभव कर पाता है। आनन्द भीतर है, सुख बाहर है। अपने सुख के लिये किसी से आशा करना पतन है। आत्मा तो स्वयं ज्ञान ही है। आत्म-ज्ञान से परमात्मा के ज्ञान का द्वार है।

हृदय वही स्थान है जहाँ से 'मैं' प्रकट होता है।

ईश्वर जो करता है वह लीला है। जीव जो करता है वह कर्म है। जिसका अन्त होता है, वह सांसारिक वस्तु है। जो कभी खोया नहीं जा सकता वही सत् परमात्मा है।

शुभ कार्य में देर न करो, क्या पता मन बदल जाये। अशुभ में देर कर दो। दुःख आये तब समझ लो कि पाप कट गया। कोई सुख दे समझ लो कि पुण्य घट गया।

तुम इतने गरुवे-गम्भीर बनो कि प्रतिकूलता का प्रभुत्व न पड़े, जो जितना हल्का होता है उतना ही अधिक प्रतिकूलता का प्रभाव पड़ता है। चेतन वस्तु के अतिरिक्त किसी व्यक्ति वस्तु को चाहना काम है। जो सभी व्यक्तियों अथवा वस्तुओं अर्थात् नाम-रूपों का जो प्रकाशक है, वही सत्-चेतन आनन्द-स्वरूप परमात्मा राम है। इस प्रकार विनाशी नाम रूपों का अविनाशी सच्चिदानन्द परमात्मा ब्रह्म को आत्मा समझते रहना ही यथार्थ ज्ञान है।

स्वयं की सत्ता ही आत्मा है। अपने ज्ञान-स्वरूप विनाशी नाम रूप अर्थात् पदार्थों को भरे रहना पाप पतन है और परमात्मा में लगाये रहना पुण्य है।

पदार्थ से सम्बन्ध टूटते ही आनन्द प्राप्त होता है। सुखी दुःखी होते रहना असत् संग है। सभी आकारों में निराकार तत्व को देखना भजन है। शत्रु-मित्र में, मारने और बचाने वालों में परमात्मा का स्मरण करो।

किसी निन्दक दोष-दर्शी को विरोधी मानकर घृणा न करो। उस पर दया करो, क्योंकि वह व्यर्थ समय शक्ति का दुरुपयोग कर रहा। कोई भी कुछ करे या कुछ भी कहे उस समय अपने मन पर पड़ने वाले प्रभाव को देखो और प्रतिकूल के लिए प्रेमभाव रख कर दया करो।

जिस वस्तु या व्यक्ति से तुम्हें अनुकूलता का सुख प्रतीत होता है उसके प्रति ममता, आसक्ति न होने दो। विवेक के सहारे संसार में अपना कुछ न मानकर स्वतन्त्र रहो।

स्वतंत्रता ही जीवन का परम लाभ है। जब कभी एकांत में साधना में तत्पर हो, तब उखो नहीं छोड़कर कहीं जाने का संकल्प न करो। कुछ लिखने-पढ़ने में मन को संतुष्ट न करो। संसार में पाने योग्य कुछ भी सत्य नहीं है, छोड़ने योग्य अनेक असत् सम्बंध हैं। किसी भी वस्तु या व्यक्ति में ममता रहने तक चाह का अन्त नहीं होता, चाह के रहते अहंकार नहीं गलता। ऐसा कोई भाग्यहीन भिरवारी नहीं जिसके पास समय न हो और उस समय का सदुपयोग न कर सकता हो।

जिस वस्तु या व्यक्ति को तुम अपनी मानकर यों ही लोभी, अभिमानी बने हो वह यदि विनाशी है, कभी उससे सम्बन्ध छूट जायेगा उसे अपनी न मानो, उपयोग, सदुपयोग करते हुये मोह-लाभ से मुक्त रहो तब तुम निर्भय

निश्चिन्त रह सकते हो जहाँ कहीं भय है, चिंता है, अशांति है, दुःख है, यह असत्-संग का परिणाम है। इन्द्रियों को विषय आहार न देकर स्थिर रखना प्रत्याहार है। धर्माचरण से अन्तःकरण शुद्ध होता है। योगानुभव से कर्ता अहंकार शुद्ध होता है। भक्ति को भजन कहते हैं। सब कुछ अर्थात् जो दीखता है, भगवान का रूप है। अनेक नाम रूप में भेद होने पर तत्त्व में भेद नहीं है जो अविनाशी है वही नित्य सत् है, जो निर्विकार है वही चेतना है। जो निर्विषय है वही आनन्द है। किसी से धन, मान, सुख चाहने में पराधीनता का अन्त नहीं होता, जहाँ विचार शान्त हो जाते हैं, वासना नहीं रहती। इस शून्यता में ही पूर्ण तत्त्व का बोध होता है।

जहाँ से अहं का स्फुरण हो रहा है, वही परम आत्मा विद्यमान है। जगत् मन में भर गया है, मन चेतनात्मा की सत्ता से मनन करता है। आत्मा निरन्तर परमात्मा से अभिन्न है। आत्मा नित्य ज्ञान-स्वरूप है इस ज्ञान को किसी भी सम्बन्ध से ढकने न देना ही ज्ञान में जागृति है। जो वर्तमान में नहीं है उसकी याद को हटाते रहो। अहं के साथ चेतन-आत्मा और आत्मा से नित्य मिला हुआ परमात्मा ही याद आता रहे।

अपने चेतन स्वरूप आत्मा के अतिरिक्त विनाशी वस्तु को या विनाशी सुख को चाहना काम है। जो निरन्तर है ही उसे जो खोजता है वही कामी है। अपने चेतन स्वरूप में बुद्धि को स्थिर रखने से काम पर विजय प्राप्त होती है। हूँ के उच्चारण से काम नष्ट होता है। सत् चेतनसत्त्व में चित्त को लगाये रहना उपासना है। विनाशी सुख में आसक्ति ही वासना है। जो पवित्र है, निर्मल है, दोष-रहित है, उसी के मनन-चिन्तन से मन, चित्त तथा बुद्धि की शुद्धि होती है।

आत्मा चेतन स्वरूप सदा शुद्ध ही है। शुद्ध-बुद्धि में ही धर्म का विवेक रहता है। जो लोभी है, मोही है, देहाभिमानी है वह असत् संगी है। जो स्वतंत्रता मोक्ष) तथा बन्धन के हेतु को जानता है, वही विद्वान है।

विद्वान को दान देने से महान् फल सुलभ होता है। विद्यार्थी की आवश्यकता पूर्ति करने से चौगुना लाभ होता है। ब्राह्मण को देने से दुगुना लाभ होता है।

मैं केवल सत्य रूप हूँ, सर्व से रहित स्वरूप हूँ। चिदाकाशमय रूप हूँ। मैं केवल ज्ञान रूप हूँ। केवल प्रिय रूप हूँ। अहं ही सर्व रूप है। अन्य किञ्चित मात्र मात्र भी नहीं है।

मैं शुद्ध चैतन्य रूप आत्मा हूँ। न मेरा चित्त है, न मेरी बुद्धि है, न मैं अहंकार हूँ, न मेरी इन्द्रियाँ हैं उपनिषद् यह भी गुरु उपदेश है :-

निन्दा-स्तुति में शान्त रहो, उत्तेजित न हो जाओ, कुछ बनो ही नहीं।

अपने निरन्तर सुलभ चैतन्य में ही बुद्धि को लगाये रहने में ही आनन्दानुभव करो। चेतना से अधिक अपनी अपने पास कुछ भी नहीं है।

साधक, साधन, साध्य

जिसमें अभिलाषा है, इच्छा है, जो कुछ पाना चाहता है वही साधक है।

जिसके द्वारा अभीष्ट की प्राप्ति होती है वही साधन है। प्राप्ति ही सिद्धि है। जिसकी प्राप्ति होती है वही साध्य है।

जिसको प्राप्त होता है वही साधक है जिसके द्वारा प्राप्त होता है वही साधन है और जो प्राप्त होता है वही साध्य है।

जीवात्मा ही साधक है, शरीर-इन्द्रियाँ तथा मन-चित्त, बुद्धि आदि अन्तःकरण ही साधन है। योगानुभूति ही सिद्धि है, परमानन्द परमात्मा ही परमोत्कृष्ट साध्य है।

जिसे साधन का और साध्य का विवेक न हो वही असाधक है, मूर्ख है। जिसे साध्य तथा साधन का विवेक है वही बुद्धिमान साधक है।

संसार के सभी प्राणियों को साधन सुलभ है, परन्तु साध्य का ज्ञान न होने से साधनों का दुरुपयोग हो रहा है। संसार में विषय जनित सुखों का भोगी मिले हुए तन, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, रूपा साधनों को अशुद्ध कर डालता है। जिसे परमात्मा के योग की अभिलाषा होती है वह इन्हीं साधनों को पवित्र बनाता है।

जो मन-चित्त, बुद्धि-अहंकार जीव के, भोग के साधन हैं वही योग के भी साधन हैं।

जो शारीरिक बल कहीं भोग का साधन है वही कहीं सेवा का साधन है।

जो मन सांसारिक वस्तुओं को, व्यक्तियों को अपना मानने का साधन है वही मन भगवान को अपना मानने का साधन है। जो बुद्धि सांसारिक वस्तुओं के ज्ञान प्राप्त करने का साधन है वही बुद्धि परमेश्वर के अथवा उसके

विधान का ज्ञान प्राप्त करने का साधन है।

जो अहं देह से तदात्मता-तद्रूपता प्राप्त करने का साधन है वही अहं भगवान से तद्रूपता प्राप्त करने का साधन है।

जो धन लोभ-वृद्धि का साधन है वही धन उदारता वृद्धि का भी साधन है। जो पदाधिकार दूसरों से मान पाकर अभिमान वृद्धि का साधन है, वही पदाधिकार दूसरों को मान-प्यार देते हुए विनम्र होने का साधन है।

थोड़े में समझना हो तो जो कुछ भोग का साधन है, वही सेवा का साधन है।

आँख-कान, हाथ-पैर, मुख-वाणी आदि इंद्रियाँ सब साधन हैं। इन साधनों के दुरुपयोग से पतन होता है इन्हीं के सदुपयोग से साधक का उत्थान होता है।

हम सभी साधकों को प्रथम इन साधनों को ही शुद्ध करना ही सिद्धि की तैयारी है।

साधन की शुद्धि

साधनों को शुद्ध करने के प्रथम उनकी अशुद्धि का ज्ञान आवश्यक है। जो तन किसी सेवा के काम न आकर बेकाम रहता है वह तन-रूपी साधन अशुद्ध है। इस तन-रूपी साधन की शुद्धि दूसरों की सेवा करने से होती है। आलसी व्यक्ति का तन अशुद्ध होता है, परिश्रमी का तन शुद्ध होता है।

नेत्र रूपी साधन से अपने अधिकार के बाहर रूप-सौन्दर्य का सुख भोगना इस साधन की अशुद्धि है। इन नेत्र रूपी साधन को किसी की सेवा में लगाना अथवा नेत्रों द्वारा ऐसे दर्शन करना जिससे भावना उँची पवित्र बनती है यही नेत्र रूपी साधन की शुद्धि है।

इसी प्रकार कानों से पराई निन्दा सुनना, बुराई सुनना, व्यर्थ प्रपञ्च की चर्चा सुनना, कान-रूपी साधन की अशुद्धि और इन्हीं कानों सत-कथा सुनना, शास्त्र चर्चा सुनना कर्ण-रूपी साधन की शुद्धि है।

वाणी द्वारा असत्य बोलना, पर निन्द करना, कठोर वचन बोलना, व्यर्थ वार्ता करना वाणी-रूपी साधन की अशुद्धि है। उसी वाणी से सत्य बोलना, भगवद्-कथा कहना मधुर बोलना वाणी रूपी साधन की शुद्धि है।

मन रूपी साधन से मिली हुई वस्तुओं को, व्यक्तियों को अपना मानकर लोभी-मोही बनना यही मन-रूपी साधन की अशुद्धि है। उसी मन से जिस परमेश्वर से सब कुछ मिलता है उसी परमेश्वर को अपना मानना, उसी से पूर्णप्रीति करना, मन-रूपी साधन की शुद्धि है।

बुद्धि-रूपी साधन को संसार के भोगों की प्राप्ति एवं उनकी रक्षा में लगाये रहना बुद्धि रूपी साधन की अशुद्धि है। उसी बुद्धि के द्वारा सद्विवेक, कर्तव्यविवेक तथा स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना बुद्धि रूपी साधन की शुद्धि है।

अहं को देहादिक वस्तुओं एवं व्यक्तियों के साथ मिलाकर उसी मय बन जाना अर्थात् अपने को काला-गोरा, मोटा-दुबला, पुत्र-पिता और पति अनेकों रूपों में देखना यही अहंकार रूपी साधन की अशुद्धि है। वही अहंकार जब सन्तों के संग से सेवक बन जाता है, भक्तों के संग से भक्त बन जाता है स्वार्थ भाव छोड़ कर परमार्थी बन जाता है। अपने से भिन्न जड़ का संग छोड़कर चिन्मय स्वरूप हो जाता है यही अहंकार रूपी साधन की शुद्धि है।

अशुद्ध के संग से ही सब साधन अशुद्ध होते हैं शुद्ध पवित्र के संग से सभी साधन शुद्ध हो जाते हैं। साधनों के शुद्ध होने पर सेवा हो सकती है परमार्थ की सिद्धि प्राप्त होती है।

जब साधक को मिले हुए साधन शुद्ध हो जाते हैं तब साधक तृप्त हो जाता है। साथ ही जिस किसी से साधक का सम्बन्ध है वह सेवा द्वारा सन्तुष्ट हो जाता है और साधनों के दाता का दान सार्थक हो जाता है।

शुद्ध साधन से ही साधक को यथार्थ सिद्धि मिलती है। साधनों के अशुद्ध रहने तक न स्वार्थ बनता है इसलिए साधक को मिले हुए साधनों की शुद्धि अर्थात् साध्य को प्राप्त करना चाहिए।

प्रचलित पूजा पाठ जप स्मरण चिन्तन आदि साधना प्राप्त साधनों की शुद्धि के लिए आवश्यक है।

संयम से ही शक्ति

संयम भी वह साधना है जिससे शक्ति रूपी सिद्धि सुलभ है संयम शक्ति का कोष है-ऐसा हमने कही पद्य था।

हमें यह समझाया गया कि अभिमान, विषयोपभोग की इच्छा आत्मसंयम में घोर बाधक है।

आत्मसंयम से ही सर्वत्र विजय मिलती है। क्रोध से सञ्चित बल का ह्रास होता है भेद भावना बढ़ जाती है। क्रोध । वह अग्नि है-जहाँ प्रकट होती है उसी स्थान को जलाती है।

क्रोध पाप को मूल है, क्रोध आप ही पाप।

क्रोध मिटे बिना ना मिटे, कबहुँ जीव सन्ताप।।

एक बार एक यवन साधु को सेवक की भूल पर क्रोध आ गया, सेवक ने संयम की याद दिलाते हुए कुरान का वाक्य पढ़ 'जो क्रोध को जीत लेता है वह स्वर्ग को प्राप्त करता है। पुनः दूसरा वाक्य पढ़-जो क्षमा करता है अधिक उच्च स्थान प्राप्त करता है। साधु ने क्रोध रोक लिया और दूसरा वाक्य सुनकर क्षमा भी कर दिया।

पुनः उस सेवक ने तीसरा वाक्य पढ़-परमेश्वर परोपकारी को प्यार करता है। यह वाक्य सुनकर साधु ने उसे गुनामी से मुक्त कर दिया।

एक विद्वान ने कहा है कि जो आवेश में नहीं आता वह मूर्ख होता है परन्तु जो क्रोध की परिस्थिति में क्रोध नहीं करता वह संयमी बुद्धिमान होता है। एक बार संयमनिष्ठ महात्मा बुद्ध गालियाँ सुनकर शान्त रहे और नम्रतापूर्वक कह दिया-ऐसा दान मैं स्वीकार नहीं करता।

मूरख का मुख बाँबिया निकसत वचन भुजंग।

ताकी ओषधि मौन है विष नहीं व्यापत अंग।।

एक बार महात्मा सुकरात की सेविका अधिकार के अभिमान में कटु वाक्य कह रही थी, सुकरात मुस्करा रहे थे, इस मुस्कराहट से उस कटु-वक्ता गृहिणी को इतना क्रोध आया कि जूटे पात्रों का धोवन जल ही सुकरात पर डाल दिया, किन्तु, संयमी सिद्ध सुकरात न हँसते हुए कहा कि 'अरे जो गरजते थे वही अब बरस पड़े' ऐसा ही होता है। सुकरात पूर्ण शान्त स्वस्थ रहे-यह संयम का ही प्रताप है।

जो मन इन्द्रियों पर पूर्ण संयम रखता है विद्वानों ने उसे ही विश्व-विजयी वीर कहा है।

जो अंतरात्मा परमात्मा के आज्ञा-पालन में तत्पर है उसी पुरुष को अपने ऊपर अधिकार प्राप्त होता है-ऐसा सन्त कहते हैं।

हमें यह भी समझाया गया है कि जो भोग से, ऐश्वर्य में, मान में, धन में आसक्त है वह असंयमी, बुद्धि योगी, कर्मयोगी नहीं हो सकता।

असंयमी भय से, चिन्ता से, तृष्णा से, क्रोध से प्रायः अशांत ही रहता है। उसकी बुद्धि स्थिर नहीं होती।

व्यर्थ चेष्टा के त्याग से, स्थिर आसन से शरीर संयमी होता है। शरीर के प्रत्यंगों में संयम रखने से इन्द्रियों की गति-शक्ति तीव्र हो जाती है। रसना को संयम में रखने से स्वाद की दासता नहीं रहती। रसना के द्वारा जो वस्तु बार-बार सेवन की जाती है उसी का व्यसन पड़ जाता है फिर छूटना कठिन होता है। सिगरेट, बीड़ी, शराब में कोई स्वाद नहीं है, तम्बाकू-चूना स्वाद के घोर प्रतिकूल है परन्तु बार-बार जीभ से टकराने से आदत पड़ जाती है, रसना उसी की अभ्यस्त बन जाती है। बार-बार उसी का स्मरण होता है अधिक देर न मिलने से उसी वस्तु का चिन्तन होने लगता है। व्यसनी व्यक्ति यदि भग्न का चिन्तन-ध्यान करने बैठेगा जो कुछ समय में व्यसन का चिन्तन ध्यान स्वतः होने लगेगा, भगवान के चिन्तन में मन लगेगा ही नहीं।

जिस प्रकार रसना में स्वादाशक्ति दृढ़ हो जाती है उसी प्रकार यदि अधिक बात करने की आदत बढ़ ली जाती है अथवा किसी अनावश्यक वाक्य को वार्तालाप के बीच में बार-बार दोहराया जाता है तो उसका भी अभ्यास हो जाता है। प्रायः अच्छे विद्वान् भी अनावश्यक शब्द का प्रयोग करते हुए वार्ता, कथा-प्रवचन के मध्य श्रम से ही विराम लेते रहते हैं।

कोई कथावाचक 'जो है सो' कहते हैं। कोई 'वास्तव के बीच में' कहते रहते हैं। कोई 'समझे' वाक्य का ही अनेकों बार दोहराते हैं, कोई 'कहना चाहिये', कोई किसी गाली अप्रिय कटु वाक्य को ही दोहराते जाते हैं। व्यर्थ वाक्य दोहराने वालों को इतना सहन अभ्यास हो जाता है कि उन्हें पता भी नहीं लगता। किसी ने कहा है :-

बहुत बोलने वाले बँधते ज्यों तोता, बुलबुल या मैना।

पिंजरे में रखने का क्या फल है ? पक्षी से किसको क्या लेना।।

जो मितभाषी है वही मननशील मुनि होता है, वही शान्त पद प्राप्त करता है। सन्त की सम्मति है :-

वाद विवादा विष घना, बोले बहुत उपाधि।

मौन गहे सबकी सहै, सुमिरे नाम अगाधि।।

स्तुति निन्दा, दोनों वाद-विवाद के फल हैं। हमें ऐसे लोगों से मिलते हुए संकोच करना चाहिये जो अधिक वार्ता करते हुए प्रसन्न होते हैं।

असत्य बोलना, दूसरों की निन्दा करना, कठोर वाक्य बोलना, व्यर्थ वार्ता करना और अपनी प्रशंसा करना-यह पाँच पाप वाणी के सन्तों से सुने व शास्त्रों में पढ़े जाते हैं।

हमें साधकों को वाणी का कहीं दुरुपयोग न करना चाहिये। श्रवण, कीर्तन और कथन मिलकर वाणी बनती है। हम साधकों को शक्ति संयम के लिए रसना में रसास्वाद की दासता का त्याग करना और वाणी द्वारा व्यर्थ शब्दों के प्रयोग न करने के लिए सावधान रहना चाहिये व्यर्थ वार्ता करनी ही न चाहिये। जिसने अधिक बोलने की आदत डाल ली है उसे तो मौन रहकर वाणी को संयम में रखने का अभ्यास आवश्यक है।

संयमी पुरुष या तो संक्षेप में प्रश्न करने के लिए या फिर प्रश्न का उत्तर देने के लिए वाणी का प्रयोग करते हैं। अनावश्यक बोलने में शक्ति का दुरुपयोग नहीं करते।

वाणी को, रसना का और उपस्थ का संयम कठिन भी है साधक के लिये इनका संयम अनिवार्य भी है इनके संयम बिना शक्ति की गति अधोमुखी रहती है, उन्नति हो ही नहीं सकती। दो इंद्रियों का संयम सध जाने पर फिर दृष्टि को संयम में रखना आवश्यक होता है।

औंख कान मुख ढीँपि के नाम निरञ्जन लेय।

भीतर के पट तब खुलें, जब बाहर के पट देय।।

औंख कान जिभ्या अभी वश में कर तू रंग।

काम क्रोध मद लोभ से निश्चय रहे अशंक।।

यो वै वाडमनसी सम्यग संयच्छनाधिया यतिः।

तस्य व्रतं तपो दानं स्रवत्याम घटाम्बुवत्।।

भगवत्)

जो साधक बुद्धि के द्वारा मन, वाणी को वश में नहीं कर लेता उसके तप, व्रत, दान उसी प्रकार क्षीण हो जाते हैं जैसे कच्चे घड़े में भरा हुआ जल स्रवित होते-होते समाप्त हो जाता है।

अतः हम साधकों को शक्ति एवं सरलता के लिए सर्वांग संयमी होना चाहिए।

साधक, की चाह

कभी भी चैन लेने ही न दे वह चाह सच्ची है।

रहे प्रिय की फिकर हरदम वही परवाह सच्ची है।।

उसी को हम असर समझें कसर बिलकुल न रह जाये।

विरह का दर्द भड़काती रहे वह आह सच्ची है।।

साधक की साधना में चाह की प्रबलता रहती है साधक की सिद्धि में चाहों का अन्त हो जाता है।

हमें तत्व ज्ञानी-विज्ञान गुरु ने समझाया है कि तुम बुद्धि को शान्त रखकर निर्णय करो कि चाहते क्या हो ? प्रबल चाह वही है, जिसकी पूर्ति के बिना चैन ही न मिले। लोभी में धन की चाह, कामी में कामिनी की चाह, मोही में प्रिय संयोग की चाह और अभिमानी में सम्मान अधिकार की चाह जब प्रबल होती है तब कहीं चैन नहीं लेने देती। इसी प्रकार किसी साधक को सिद्धि मिले बिना, किसी प्रेमी को प्रेमपात्र के बिना, किसी सेवक को स्वामी की सेवा के बिना, भक्त को भगवान की भक्ति के बिना, पथिक को अपने परम लक्ष्य में पहुँचे बिना अन्य कहीं कुछ पाकर चैन नहीं लेना चाहिये।

सन्त सद्गुरु का कथन है कि तुम जो कुछ अधिक से अधिक चाहते हो उसे थोड़ा पाकर सन्तोष न करो। असन्तोष से प्रयत्न होता ही रहता है। न मिलने का दुःख कहीं चैन नहीं लेने देता, इसीलिए किसी की सेवा में, पूजा में, आराधना में, जप में संतोष न कर बैठो।

सद्ज्ञान की कमी, दया की, क्षमा की कमी, उदारता की कमी, सहिष्णुता, नम्रता आदि सद्गुणों की कमी का दुःख बढ़ाओ तभी परमार्थिक सिद्धि सुलभ हो सकेगा।

बहुधा लोग पूछते हैं कि भगवान से प्रेम कैसे होगा ? यह गुरु समाधान है कि भगवान से प्रेम करना चाहते हो तो अभी जिन वस्तुओं तथा व्यक्तियों से प्रीति करते हो वहीं से मन हटा लो तभी भगवान से प्रीति कर सकोगे।

वस्तुओं तथा व्यक्तियों में फँसी हुई प्रीति हटाना चाहते हो तो किसी वस्तु व्यक्ति को अपनी न मानकर, परमेश्वर के विधान से मिली हुई जानो।

परमेश्वर से प्रीति करना चाहते हो तो केवल उस प्रभु को ही अपना मानो क्योंकि तुम्हारा वही अपना है जो तुम्हें कभी छोड़ता ही नहीं, प्रत्युत कुछ लिये बिना ही तुम्हें देता ही रहता है। एक विशेषता यह भी है कि तुम्हारा भोगा हुआ लेता है, नया देता है। एक सन्त से मैंने सुना था कि उस दाता की एक महानता यह भी है अधिकाधिक शुभ-सुन्दर-पवित्र का दान करते हुए अपने को इतना छिपाये हुए है कि जो कुछ ऐश्वर्य-माधुर्य-सौन्दर्य हम सबको मिला है वह अपना ही प्रतीत होता है क्योंकि दाता दिखाई नहीं देता।

कुछ लोग परमेश्वर से प्रीति करना चाहते हैं परन्तु जगत् से अर्थात् अनेकों वस्तुओं, व्यक्तियों से सम्बन्ध जोड़े रहते हैं वस्तुओं के द्वारा तृप्ति की आशा रखते हैं।

गुरु आदेश तो यह है कि तुम परमात्मा से प्रेम करना चाहते हो, तो अन्य किसी से आशा एवं सम्बन्ध न रखकर सबसे निराश हो जाओ। एक वस्तु, एक व्यक्ति से भी कुछ आशा बनी रही तो सम्बन्ध रहेगा ही, जितने अंश में आशा रहेगी, सम्बन्ध रहेगा उतना ही अंश परमात्मा के पूर्ण योग में बाधा डालता रहेगा। इसीलिए सबसे निराश होकर एक परमात्मा में ही निर्भर रहो।

यदि तुम किसी चाह को पूर्ण करना चाहते हो तो अनेकों चाहों को छोड़कर एक चाह को इतना प्रबल होने दो कि उसकी पूर्ति हुये बिना कभी कहीं चैन न लो।

किसी कमी को पूर्ण करना चाहते हो तो उस कमी का दुःख बढ़ाओ। किसी कमी का जब दुःख होता है तब उसकी प्राप्ति या पूर्ति के लिये चाहते जितना श्रम-संयम, तप-त्याग करना पड़े सब कुछ कर डालना सुगम प्रतीत होता है।

जीवन में स्वाधीनता चाहते हो तो देह-गेह, धन-भूमि आदि वस्तुओं तथा सम्बन्धित व्यक्तियों के प्रति आसक्ति का त्याग करो, क्योंकि जहाँ कहीं आसक्ति होती है वही स्वाधीनता छिन जाती है।

सदा निर्भय रहना चाहते हो तो जो कुछ विनाशी है, परिवर्तनशील है जिसे तुम सदा अपने साथ नहीं रख सकते, जो किसी समय भी तुमसे छिन सकता है उसे अपना मान कर लोभी-मोही, अभिमान्नी न बनो।

यदि तुम लोभ, मोह, अभिमान से रहित होना चाहते हो तो जो कुछ पहले नहीं था कभी मिला है जो सदा नहीं रहेगा उसे अपना न मानो।

आस्तिक होना चाहते हो तो जिससे तुम्हें तन-मन, बुद्धि इंद्रिय सहित जीवन मिला है उसे जानो उसके विधान का ध्यान रखकर मिले हुए का सदुपयोग करो।

सच्चिदानन्द घन तत्त्व को सर्वमय जानकर जो सदा शान्त, निर्भय, निश्चित है वही आस्तिक है।

यदि तुम ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो तो जो वस्तु सामने हो जिससे भी तुम्हारा सम्बन्ध हो उसका विषय में श्रवण करो। श्रवण भी उसी से करो जो आपमें प्रथम ही वह भी किसी ज्ञानी से श्रवण करके ज्ञान प्राप्त कर चुका हो। सावधान रहना। मनुष्य कुछ ऐसा सुनता है जिससे योगी हो जाता है, कुछ ऐसा भी सुनता है कि भोगी हो जाता है।

तुम्हें श्रवण के द्वारा यदि तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करना है, योगी होना है तो तत्त्वनिष्ठ योगी-जनों के द्वारा श्रवण करना।

ऐसा सुनना प्रायः सभी को सर्वत्र सुलभ है जिसे सुनकर भोग-कामनाओं की वृद्धि होगी है। ऐसी बातें लोग सर्वत्र सुनते हैं जिनसे लोभ, मोह, अभिमान, ईर्ष्या-द्वेष, कलह-क्रोध आदि मानस रोगों की वृद्धि होती है।

मनुष्य के लिये वही सुनना शुभ-सुन्दर पवित्र है जिससे सत्-असत् का पाप-पुण्य का, अधर्म-धर्म कास, जड़-चेतन का, कर्तव्य-अकर्तव्य का, आत्मा-अनात्मा का जीव-ईश्वर का विवेक हो।

यदि अपना समय व्यर्थ नहीं खोना चाहते हो तो जब कभी किसी विद्वान् की साधु-सन्त की बात सुनो तब विचार करो कि जो कुछ सुना उससे किस विषय का ज्ञान बढ़े? श्रवण करने के पश्चात् मौन होकर मनन करो।

अनेकों व्यक्ति साधु-महात्माओं के प्रवचन सुनते हैं, कभी सुनते हैं कभी-कभी सुनकर प्रसन्न भी होते हैं परन्तु पर-निन्दा सुनकर, दूसरे के दोषों की चर्चा सुनकर, अपनी निन्दा-स्तुति सुनकर जितना कुछ प्रभाव पड़ता है उतना प्रभाव सत् चर्चा, भगवद् चर्चा, धर्म चर्चा सुनकर नहीं पड़ता है श्रवण करने के पश्चात् अपना निरीक्षण आवश्यक है।

गुरुजनों ने साधकों को सावधान किया है कि यदि तुम भजन करते हो तो भोगों से विरक्त बनो। अधिकतर अनेकों व्यक्ति भजन करना चाहते हैं, भजन को केवल जप की कुछ संख्या में सीमित कर देते हैं, कुछ साधक निश्चित समय तक भगवत् नाम संकीर्तन को ही भजन मानते हैं इसी प्रकार भजन के विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं, मान्यताएँ हैं।

भगवान की भक्ति चाहने वाले वह साधक कहीं-कहीं मिलते हैं जो सभी अंगों को लेकर निरन्तर भगवत् भजन करते हैं। प्रायः किसी का भजन आधा घण्टा, बहुत ऊँचा साधक छः घण्टे भजन करने के लिए प्रसिद्ध हो जाता है किन्तु भजन तो उसे कहते हैं जिसका आरम्भ होता है, अन्त नहीं होता।

परमेश्वर के नाम जप तथा संकीर्तन का समय निश्चित होता है किन्तु संसार के परिवार से सम्बन्धित जप, कीर्तन बहुत ही उदारता, तल्लीनता पूर्वक चलता रहता है उससे समय का कुछ बन्धन ही नहीं है।

हमें साधन-पथ में चलते हुए अधिक समय बिता देने के पश्चात् ज्ञात हो सका कि हम ऊपर मन से भगवान को पाना चाहते हैं और भीतर से भोगों को पकड़ें हुए हैं। जो कोई भगवान का योग चाहता है उसे भोगों का त्याग करना ही होगा। यह सत्य ही कहा है:-

जो चाहो हरि भक्ति को तनो विषय रस पान।

एक साथ रहते नहीं भोग और भगवान।।

यह गुरु निर्देश है कि यदि तुम भगवान को चाहते हो तो भगवान का नाम जपो उनके ऐश्वर्य, माधुर्य, सौन्दर्य का स्मरण, चिन्तन-ध्यान करते रहो उनके अतिरिक्त अन्य कुछ भी न चाहो सब कुछ देख कर उनसे उम्बन्ध जोड़े परंतु उन्हें किसी के लिए न छोड़ो। उन्हें स्मरण रखकर चैन से रहो पर उन्हें भूलकर कहीं चैन न लो। सावधान रहो।

हम साधकों को गुरु-विवेक निर्णय दे रहा है कि हानि के दुःख से गचना चाहते हो तो भूल से बचो ह्रास के कष्ट से बचना चाहते हो तो भ्रांति से बचो, विनाश की वेदना से बचना चाहते हो तो अज्ञानता की सीमा को पार करो।

हानि का दुःख उसे ही होता है जो वर्तमान कर्तव्य को भूल जाता है। कर्तव्य का सम्बन्ध वर्तमान में प्राप्त शक्ति से है, योग्यता से है तथा वस्तुओं से है।

जो मनुष्य मिली हुई वस्तुओं का, योग्यता का, शक्ति का भोग न करे कर्तव्य-कर्म के लिये सावधान रहता है वही हानि का दुःख नहीं देखता।

यदि भूल से बचना चाहते हो तो बुद्धियोगी बनो।

बुद्धियोगी होना चाहते हो तो तन को, इन्द्रियों को तथा मन को संयम-नियम में रखो और नित्य-निरन्तर मिले हुए सर्वमय परमात्मा का प्रेमपूर्वक भजन करो।

परमात्मा का भजन करना चाहते हो तो जप-पूजा-पाठ, कथा श्रवण आदि साधनों द्वारा परमात्मा प्रभु से पूर्ण अपनत्व का सम्बंध दृढ़ करके उन्हीं के नाते सब कर्म करो।

भजन की पूर्णता के लिये विषय-विकारों का त्याग करके मन को वश में रखकर सदा सम रहना, संतोष रखना, पवित्र विचारों का आश्रय लेकर सत्संग करना आवश्यक है। इसके साथ ही काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-अभिमान राग-द्वेष का विशेष रूप से त्याग आवश्यक है केवल अपने आराध्य प्रभु की ही कथा-चर्चा को सुनना, उन्हीं का चिंतन मनन उन्हीं के गुणों का, ज्ञान का ध्यान रखना उन्हीं के नाते सबकी सेवा करना भक्त का कर्तव्य है। यह गुरु निर्णय है कि संसार में रहते हुए यदि परमात्मा में अनुरक्त होकर रहना चाहते हो तो यह गुरु आदेश है कि विरक्त बनो। विरक्त हुए बिना अनुरक्ति नहीं होती।

देह में, धनमें, मान में, भोग में, तथा किसी भी वस्तु में जब तक जितने अंश में आसक्ति रहेगी, तब तक उतने ही अंश में प्रीति के प्रति अनुरक्ति में कमी रहेगी।

यदि किसी व्यक्ति में आसक्ति है तो उसकी सेवा करो, अपनी पूर्ति उससे न चाहो, मान न चाहो, धन न चाहो, अधिकर न चाहो, प्यार भी न चाहो तभी सेवा पूर्ण होगी। इस प्रकार की सेवा से चित्त शुद्ध चित्त में ही विराग दृढ़ होता है अशुद्ध चित्त रागी-आसक्त बना रहता है।

किसी वस्तु में आसक्ति है तो उसका भोग न करो। जितना भोग करोगे उतनी ही आसक्ति बढ़ेगी। लोभ से मान अशुद्ध होता है, उदारता से शुद्ध होता है। शुद्ध मान विरक्त हो जाता है।

एक सज्जन ऐसे मिले जिन्हें मिठाई खाने की आदत थी मिठाई की आसक्ति नहीं छूटती थी वे बहुत अच्छे उपदेशक भी थे उन्होंने बालकों को मिठाई बाँटना आरम्भ किया जब मिठाई खाने की इच्छा होती थी तब स्वयं न खाकर बालकों को मिठाई खिलाते थे। कुछ ही दिनों में मिठाई के प्रति आसक्ति छूट गई,।

संत की संगति से यह सत्य समझ में आया कि कोई भी साधक जब तक अप्राप्त की चाह लेकर दूसरों के पास उस सामग्री को देखकर चिंतन करता रहेगा तो चिंतन करने मात्र से मन-चाही वस्तु मिलेगी नहीं। अतः जो अपने साथ नहीं है उसके चाह का तथा चिंतन का त्याग करके उस अवसर में जो कुछ किया जा सकता हो उसी की पूर्ति में समय शक्ति का सदुपयोग करना चाहिये।

यदि किसी की सेवा का अवसर हो तो सेवा करनी चाहिए। यदि सेवा न हो तो व्यर्थ वार्ता, व्यर्थ चिंतन छोड़ कर तन से निष्क्रिय तथा मन से निःसंकल्प और बुद्धि से विचार-शून्य होकर चिद्धन तत्व में विश्राम करना चाहिए। यदि यह समझ में न आये, ऐसा न हो सके तब स्वयं कुछ उसे तटस्थ रह कर देखते रहना चाहिए, उसमें अपना सहयोग न देना चाहिए- ऐसा करने से कुछ समय बाद मन योग का अनुभव होगा। जिसकी सत्ता से ही मन बुद्धि में प्राणों तथा तन में गति हो रही है। संकल्प के त्याग से बुद्धि स्थिर होती है।

यदि ऐसा होने में कठिनता दीखती हो तब शान्त होर परमात्मा के नामों का जप तथा उसके गुणों का स्मरण उसकी दया कृपा का मनन करना चाहिए। जब स्मरण जप में मन न लगे तब धर्म-ग्रन्थों का, सन्तों की वाणी का अध्ययन करना चाहिए।

नारायण बिन बोध के पंडित पशू समान।

ताते अति मूर्ख भलों जो सूमिरे भगवान् ।।

साधक की पूजा- आराधना

किसी भी कल्याण चाहने वाले साधक के लिए भगवान् की यही आज्ञा है कि भविष्य की चिन्ता न करें, बीती घटनाओं, सुखों-दुःखों का मनन न करें, वर्तमान समय में जो कुछ शुभ-कर्म कर सकते हो वह करते जाओ। कर्म के फल की चिन्ता न करो प्रत्युत् फल के त्यागी बनो।

वर्तमान में कर्तव्य-पालन के लिए जो सावधान रहता है, जो व्यर्थ वार्ता में, व्यर्थ चिंतन में समय नष्ट नहीं करता, जो परमात्मा का स्मरण करते हुए, मिले हुए को अपना नहीं मानता, ममता रहित होकर जो मिली हुई शक्ति से, संपत्ति से सेवा करता है बदले में मान की, धन की, भोग की कामना नहीं रखता, उसी का भविष्य सुन्दर होता है, उसी को परमेश्वर के विधान से जो कुछ मिलता है शुभ, अति सुन्दर, उत्कृष्टतम मिलता है।

भगवान् का निर्णय है कि जब तक विवेक द्वारा मोह-रूपी दल-दल से बुद्धि नहीं निकल आती तब तक कितना ही कुछ किया जाय, सुना जाय साधक को वैराग्य नहीं होता। संसार के भोगों से, वस्तुओंसे, व्यक्तियों से राग-रहित हुए बिना भक्ति-मुक्ति नहीं मिलती।

जब तक हम साधक कोई कर्म नहीं करते हैं तब तक कर्तव्य का विवेक रखना अत्यंत आवश्यक है।

जहाँ कहीं हम साधकों के मन में किसी वस्तु, व्यक्ति का स्मरण होता रहता है वही पर परमेश्वर का नाम स्मरण करना अत्यंत आवश्यक है। व्यर्थ चिंतन के स्थान में परमेश्वर का चिंतन परमावश्यक है।

हम लोग अपने प्रिय स्वजनों की कोई वस्तु देखते हैं तो उन सम्बंधियों के दूर रहने पर भी उनका स्मरण होता रहता है परन्तु परमेश्वर के संसार में, उनके दिये हुए शरीर में रहते हुए भी हृदय में उस परम दाता को भूले रहते हैं।

जो साधक परमेश्वर को सर्वस्व का दाता प्रियतम मानता है वह पानी पीते हुए, भोजन करते हुए प्रिय माता पिता, पत्नी, पुत्रादि के साथ सुखानुभव करते हुए परमेश्वर का स्मरण करता रहता है।

विवेकी प्रेमी भगवान् को भोग नहीं लगाता बल्कि भोजन करते समय भगवान् का दिया हुआ समझते हुए स्वयं एक-एक ग्रास प्रभु-प्रसाद समझ कर खाता है।

विवेकी साधक परमेश्वर को पानी नहीं पिनाता प्रत्युत् शीतल-जल का एक-एक घूंट पीते हुए महान् दाता परमेश्वर का स्मरण करता है। समस्त सुख परमेश्वर का ही दान समझता है।

विवेकी आस्तिक परमेश्वर का मंदिर नहीं बनाता, वह अपनी देह को ही परमेश्वर की महामाया द्वारा निर्मित मंदिर समझकर उसी देहरूपी मंदिर में अपने को और अपने प्रियतम परम प्रभु को नित्य प्रतिष्ठित देखते हुए आराधना उपासना करता रहता है।

विवेक प्रेमी परमेश्वर की पूजा के लिये प्रकृति निर्मित पुष्पों को तोड़कर अनाधिकार कृत्य नहीं करता, वह तो परमेश्वर के विधान से मिले श्रद्धा, करुणा आदि समस्त देवी गुणों को पूजा के पुष्प समझकर परमेश्वर को सृष्टि के अर्पण करता रहता है। देवी-गुणों द्वारा व्यवहार करते हुए सबको सन्तुष्ट रखना ही प्रभु की पूजा जानता है। विवेकी आस्तिक परमेश्वर की खोज में हिमालय अथवा समुद्र की यात्रा नहीं करता वह तो उस व्यापक प्रभु की खोज वही से आरम्भ करता है जहाँ स्वयं है; अर्थात् अपने आप में ही परमप्रभु को खोजता है, अपने आप में ही नित्य विद्यमान रहने का विश्वास रखता है; अपने आप की संग रहित स्वरूप अनुभूति को ही ज्ञान समझता है। विवेकी आस्तिक दीखने वाले मनुष्य के बनाये मन्दिरों में भगवान को मस्तक झुकाता ही है इससे भी अधिक परमेश्वर के बनाये हुए मंदिरों में प्रत्येक जीवात्मा को जो कि उसी प्रभु का अंश है-सर्वत्र मस्तक झुकाता ह।

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राम मय जानि ।

तिनके पर बन्दन करहुँ सहदा जोरि जुग पानि । ।

सर्व रूप मयी देवी सर्वम् देवी मय जगत् ।

अतौहं विष्वरूपां तां नमामि परमेश्वरीम् । ।

जिसे भगवान से प्रीति होगी, जिसे आत्मा का ज्ञान होगा, आत्मा से ही प्रेम होगा, जो आत्मा में ही परम सुख

देखता होगा, वही संसार के संग-प्रभाव से शोकित-दुखित नहीं होगा ।

संसार की वस्तुओं-व्यक्तियों को अपनी मान कर मोह, ममता रख कर कोई भगवान की भक्ति नहीं प्राप्त कर सकता, किसी वस्तु, व्यक्ति में सुखसक्त रहकर कोई आत्मा में प्रीति रखने वाला, अपनी आत्मा में सन्तुष्ट रहने वाला सिद्ध नहीं हो सकता वह अनात्मा में आसक्त रहकर भक्त नहीं हो सकता ।

मन्दिर जाते हुए, पूजा करते हुए, पाठ-स्तुति-जप करते हुए, सन्त गुरु का सुसंग करते हुए जिसकी वृत्ति सुखोपभोग से सनी रहेगी, वही मोही सत्संग द्वारा विवेकी नहीं हो सकता; जो विवेकी होगा वह भोगी नहीं रह सकता ।

हमें अपना निरीक्षण करना होगा कि सत्संग करते हुए हम भोगी बन रहे हैं या विवेक प्राप्त कर रहे हैं।

जब तक वैराग्य न हो तब तक समझना चाहिए कि हमारी बुद्धि मोहरूपी दल-दल में फँसी हुई है।

विचार विवेक के द्वारा ही मोह की निवृत्ति हो सकती है। संतसंग से, शास्त्र-अभ्ययन से विचार-विवेक बढ़ता है।

ना सुख बीच गृहस्थके, ना सुख छाँड़ि गए ।

सुख पथ बीच विचार में, सन्त की शरण गहे । ।

‘तन सुखाय पञ्जर करै, घरे रैन दिन ध्यान ।

तुलसी मिटे न बासना, बिना विचारे ज्ञान । ।

विचारवानों के संग का योग न हो तब विचार-रूपी भोजन देते रहने से बुद्धि बनवती होती है भोजन सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी तीन प्रकार का होता है।

साधक का सात्विक भोजन

शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और अहंकार को सतोगुणी आहार देना चाहिये, जिस अंग का जैसा आहार होगा वैसी ही प्रवृत्ति होगी। शरीर का भोजन अन्न, जल, फल, दुग्ध आदि है, हम साधकों को सतोगुणी आहार का सेवन करना चाहिए। भोगासक्त, रजोगुणी, तमोगुणी आहार करते हैं।

इन्द्रियों के आहार उनके विषय है। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इन्हीं पाँच विषय रूपी आहार से पुष्ट होती है।

हम साधकों को सतोगुणी दर्शन, सतोगुणी श्रवण, सतोगुणी स्पर्श, सतोगुणी रसादि को मर्यादा के भीतर स्वीकार करना चाहिये। रजोगुणी, तमोगुणी विषयों के सेवन से इन्द्रियाँ रजोगुणी, तमोगुणी बन जाती हैं जो कि साधक की साधना में बाधक बनती है। इसीलिए साधक को ऐसे दर्शन, ऐसा श्रवण, ऐसा स्पर्श, ऐसा रसास्वाद न करना चाहिये जिससे कामनायें प्रबल हों, चञ्चलता बढ़ती जाये। साधक को पवित्र दर्शन का, सत चर्चा, हरि कथा श्रवण का प्रसाद रूप से सात्विक आहार का ही संकल्प पूरा करना चाहिये, रजोगुणी भोग का संकल्प तत्काल छोड़ देना चाहिए।

मन का आहार इच्छाओं की पूर्ति है। साधक को सदा स्वामी की तथा गुरुजनों की इच्छा पूर्ति का पक्ष लेना

चाहिये।

अपनी इच पूर्ति करते रहने से हम भोगी बन जाते हैं मन को वश में करना दुःख होता है मन विकारी हो जाता है।

काम-क्रोध द्वेषाग्नि में, दहत सकल संसार।

विरले ही जन बचत हैं, जहाँ विराग विचार।।

बुद्धि-दृष्टि से विवेक द्वारा यह ज्ञान हम साधकों को है ही कि जब कभी काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेषादि विकारों का वेग मन में बढ़ता है तब स्वरूप को तथा कर्तव्य की एवं परम प्रभु की स्मृति नहीं रहती।

संत संगति से हम यह जान सकें कि जिसकी विस्मृति हो जाती है उस स्वरूप की तथा कर्तव्य की एवं प्रभु की स्मृति के लिये वाणी के मौन के साथ मन से भी मौन होना आवश्यक है। सर्वांग मौन पर ही स्मृति जागृत होती है।

हम लोगों का यह तो अनुभव है ही कि कुछ अंशों में मौन होते ही पुरानी बातों का स्मरण होने लगता है। इंद्रियों के मौन से मन में भरी हुई घटनायें, देखी सुनी, भोगी हुई बातें याद आती हैं। यदि मन मौन हो जाय अर्थात् मन संकल्प रहित हो जाय, तब कर्तव्य की स्मृति होती है, इसी क्रम में जब बुद्धि स्थिर हो जाती है तब स्वरूप की स्मृति रहती है और जब प्रीति का भोग नहीं किया जाता तब प्रेमास्पद प्रभु की स्मृति अन्त रस की अनुभूति कराती है - यह अनुभवी पुरुषों का निर्णय है।

साधना की सिद्धि के लिये मन को वश में करना और बुद्धि का स्थिर होना अत्यावश्यक है। मन को वश में रखने के लिये उसे आहार सात्विक देना होगा। केवल शुभ संकल्पों की ही पूर्ति का पक्ष लेना होगा। शुभ संकल्प वही है जिसकी पूर्ति के लिए पराश्रय न लेना पड़े। जिससे किसी कारण की क्षति न हो, जिसकी पूर्ति में पराधीनता न हो।

देह, इन्द्रियाँ मन के आहार जिस प्रकार तीन गुण वाले हैं। उसी प्रकार बुद्धि का आहार अध्ययन द्वारा अथवा श्रवण द्वारा प्राप्त होने वाले विचार हैं। वह भी त्रिगुणात्मक है।

सन्तों, महात्माओं द्वारा, सत्कथा श्रवण से, अथवा धर्म शास्त्रों, आध्यात्मिक ग्रन्थों के अध्ययन से बुद्धि को सात्विक आहार सुलभ होता है। बुद्धि को सात्विक आहार प्रभु की कृपा की से ही कभी-कभी सुलभ होता है।

बुद्धि के आगे अहंकार का आहार सम्मान है। जितना मान मिलता है उतना ही अहंकार स्थूल हो जाता है। साधना पथ की चढ़ाई में अहंकार को हल्का करना आवश्यक होता है।

अच्छे विद्वान् त्यागी तपस्वी अहंकार को बलवान् स्थूल बनाकर साधना पथ से फिसल जाते हैं लक्ष्य पर चढ़ नहीं पाते। हमें सभी अंगों को सात्विक आहार देकर सतोगुणी बनाना है।

तमोगुणी, रजोगुणी आहार के पक्षपाती रजोगुणी बुद्धि से कितना ही ग्रन्थों का अध्ययन करें प्रवचन सुनें, जब तक आलस्य रहता है द्वेष, क्रोध, संशय और काम विकार को भीतर स्थान मिलता रहता है। तब तक शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, बुद्धि में आवरण रहा करता है।

यह भी पता चला है कि हमारे भीतर जब तक दृढ़ संकल्प नहीं होता, जब तक सतत् प्रयत्न नहीं चलता, जब तक उत्साह ढीला रहता है और मन इंद्रियों के संयम की कमी रहती है। तब तक उस असाधारण क्षमता की तथा साहस की प्राप्ति नहीं होती जिसके द्वारा साधना की सिद्धि मिलती है, अन्तःकरण की शुद्धि होती है।

सन्त का आदेश है कि तुम पूर्णतया मनोबल, श्रद्धाबल, प्रज्ञाबल, स्मृतिबल और समाधिबल की प्राप्ति का ही दृढ़ संकल्प करो। इन्हीं बलों से साधना को पूर्णता प्राप्त होगी इन बलों की सिद्धि सतोगुणी आहार से होती है।

श्रुति का संदेश है कि यदि तुम सुख से सोना, सुख से जागना चाहते हो। चिन्ता दुःस्वप्नों से बचना चाहते हो। सर्वत्र निर्भय रहना चाहते हो, देवताओं से रक्षा पाना चाहते हो, सदा स्वस्थ और शान्त रहना चाहते हो तो मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा इन चार दिव्य भावनाओं को धारण करो।

किसी प्राणी से घृणा-द्वेष न करने से सबको परमेश्वर के ही जीवात्मा मानने से मैत्री भावना पुष्ट होती है।

जो दुःखी जन हैं, उनके प्रति सहानुभूति तथा यथा शक्ति सहायता करने से करुणा भावना हृदय को सरल कोमल बनाती है।

जो अपने आस-पास सुखी प्राणी हैं उनके सुख से सन्तुष्ट प्रसन्न रहने से मुदिता भावना पुष्ट होती है।

जो प्रतिकूल स्वाभाव के, दैवी सम्पदा से विरुद्ध, दूसरों को कष्ट देने वाले हैं, उनसे सम्बन्ध न जोड़ने से उपेक्षा

भावना पुष्ट होती है।

इन चारों सामयिक भावना से साधक पाप प्रवृत्ति से बचता रहेगा; संघर्ष में न उतरना होगा, चित्त नितान्त शांत, बुद्धि समरिथत रहेगी।

साधक ही इन चारों भावना को पुष्ट करते हैं। असाधक इनका पक्ष नहीं लेते।

जो साध्य को प्राप्त किये बिना कहीं चैन नहीं लेता वही साधक है।

साध्य को प्राप्त कर लेने पर ही जीवन में पूर्ण शांति, पूर्ण विश्राम सुलभ होता है।

विचारवान साधकों की समझ में यह तो आ ही जाना चाहिये कि जब कहीं हम दुःखी होते हैं तब अपने ही बनाये हुए दोष के कारण ही दुःखी होते हैं चाहे वह दोष लाभ हो या मोह या अभिमान हो या कोई कामना हो। अपनी अनुकूलता में सुख की प्रतीति होती है, प्रतिकूलता में ही दुःख की प्रतीति होती है।

प्रायः यह भूल होती रहती है कि हम दुखी होकर किसी अन्य को दुःख का कारण मान लेते हैं और दुःखदाता के प्रति क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, निन्दा करते रहते हैं।

विद्वानों ने सहिष्णुता को वीरों का बल एवं क्षमा को वीरों का भूषण बताया है परन्तु हम साधक प्रतिकूलताओं के मध्य धैर्य धारण करना, सहन करना, क्षमा करना भूल जाते हैं और क्रोध के वशीभूत होकर न करने योग्य कर्म कर बैठते हैं।

सन्त-संग में हमने सुना है कि अपने अधिकार का त्याग करने से क्रोध नहीं आता और दूसरों के अधिकार पूर्ति करने से लोभ नहीं रहता। देहादिक वस्तुओं को अपना न मानने से ममता, अभिमान नहीं रहता।

हमें समझाया गया है कि जहाँ किसी प्राणी को दुःख होता है अथवा अपने द्वारा किसी का अहित होता है अस्तोष होता है वहाँ दया नहीं है, जहाँ दया नहीं वहाँ धर्म का पक्ष नहीं है।

धर्म विहीन प्राणी में हिंसा, कठोरता, स्वार्थपरता, अमर्यादित भोग, क्रोधादिक विकार प्रबल रहते हैं।

हमें यह भी समझाया गया है कि जिनसे तुम्हारा संबंध है उनकी माँग पूरी कर दो, उस सेवा का अभिमान न आने दो। यही समझो कि जिसको जो कुछ दिया है वह उसी के हिस्से का है। जिसके हिस्से की जो सेवा हो उसे करके उन्नत होते जाओ। जो माँग पूरी न कर सको उसके लिये क्षमा माँग लो।

किसी से अपने लिये जब कोई चाह होती है उसी से सम्बन्ध दृढ़ होता है, लोभ-मोह-अभिमान आदि दोषों की पुष्टि होती है।

साधक को दोषों से बचते रहना बहुत ही आवश्यक है। प्रायः साधना के बीच में लोभ-मोह, अभिमान, काम, क्रोध, ईर्ष्या-द्वेषादि महान विघ्न हैं। इनके अतिरिक्त 18 दोषों से साधक को सावधान रहना चाहिये।

1. आलस्य 2. अनियमित निद्रा 3. अधिक भोजन 4. उन्मादी प्रकृति 5. प्रपञ्ची स्वभाव 6. अनियमित कार्य 7. विलासिता 8. मान का सुख 9. अमर्यादित कामना 10. अपनी बाईं 11. तुच्छ वस्तुओं में सुख मानना 12. रसास्वाद 13. अतिभोग 14. दूसरे का अनिष्ट करना 15. अकारण सञ्चय 16. अनेकों से स्नेह 17. अयोग्य स्थल में निवास 18. नियम पालन न करना।

इन दोषों में कोई भी दोष होगा तो मन को चंचल बनाता रहेगा। साधना में विघ्न होता रहेगा।

अपनी निरीक्षण करते हुए यह भी समझ में आया कि जीव के समस्त बन्धन मन की भूमिका में ही दृढ़ होते हैं। तभी तो मन को ही बन्धन और मुक्ति का कारण माना है। मन ही नरक को स्वर्ग और स्वर्ग को नरक बना देता है। अनेकानेक साधना केवल मन के शुद्ध सात्विक होने के लिए करनी पड़ती है। भगवान की प्राप्ति मन के निर्मल होने पर ही सम्भव है। लिखा भी है :-

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।

मोहि, कपट छल छिद्र न भावा।। रामायण)

भगवान का नाम-जप इसीलिये किया जाता है कि जिस मन के द्वारा संसार के विनाशी वस्तुओं के नाम रूप से सम्बन्ध जुड़ गया है उसी मन के अविनाशी परमेश्वर के नामों का आश्रय लेकर प्रभु से सम्बन्ध जुड़ जाये। मन के लगाने के लिये ही भगवान की लीलाओं का वर्णन, धाम का वर्णन, उनके अनन्त-गुणों का वर्णन किया गया है। परमेश्वर के असीम ऐश्वर्य, अगाध माधुर्य, अनुपम सौन्दर्य की झोंकियाँ दिखाई गई हैं-यह सब उपाय संसार में रागी मन को भगवदानुरागी बनाने के लिये ही रचे गए हैं।

‘साधन सिद्धि राम पद नेहू।।’

वर्तमान में ही भविष्य बनता है

वर्तमान को शुभ-सुन्दर से भर दो, यही सिद्धों की प्रेरणा है)

जब हम पर किसी संग का प्रभाव पड़ता है या हम स्वयं ही जब किसी वस्तु-व्यक्ति के संयोग का मूल्य बढ़ देते हैं तभी उसके संयोग में सुखी और वियोग में दुखी होते हैं। सुखी-दुखी होकर नाना प्रकार नये-नये कर्म करते हैं, पुनः आगे लिये नये-नये अनुकूल-प्रतिकूल भोग निश्चित हो जाते हैं। मनुष्य के सामने जैसी भी अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति है अर्थात् जैसे भी सम्बन्धी मिले हैं, जैसा शरीर मिला है, जैसी शक्ति, सम्पत्ति, गरीबी या अमीरी, सुख या दुःख मिला है, वह सभी कुछ अपने पहले किए गए कर्मानुसार या राग-द्वेष के अनुसार आसक्ति का परिणाम भोग के लिए निश्चित हुआ है।

जो साधक आगे आने वाले भविष्य में प्रतिकूल भोग से बचना चाहता हो वह वर्तमान में कर्म करते हुए विवेक का सहारा लेकर त्यागी और प्रेमी होकर रहे-इसी में कल्याण निश्चित है।

हम साधकजन अपने पूर्व व्यवहार बर्ताव पर विचार करें तो अपनी भूलों का दर्शन होता है। यद्यपि पहले की हुई भूलों का मनन करना भी भूल है परन्तु भूलों का स्मरण आने पर पुनः भूल न दुहराना जीवन का सुधार है। हम साधकों ने जहाँ किसी की निन्दा की है या किसी की निन्दा सुनी है। जहाँ कहीं अपने सम्मान के लिये दूसरों का अपमान किया है अपने को श्रेष्ठ दिखाने के लिये किसी को तुच्छ न्यून सिद्ध किया है। जहाँ कहीं अपने लाभ-लोभ वश दूसरे को हानि पहुँचाई है, अपने सुख के लिये किसी को दुःख दिया है वहीं पर हमने अपना भविष्य प्रतिकूलताओं से घेर लिया है। जो दूसरों के साथ किया जाता है वहीं अपने प्रति निश्चित हो जाता है-इस नियम को सुनते सम्झते हुए भी अवसर पर जहाँ क्षमा करना चाहिये वहीं क्रोध आ जाता है। जहाँ वस्तु दान का अवसर आता है वहाँ हाथ रुक जाता है, दिया नहीं जाता है।

जहाँ निन्दा के शब्द सुनने के प्रथम ही बोलने वाले को नम्रतापूर्वक रोका जा सकता है वहाँ मौन हरकर निन्दा सुनी जाती है और जहाँ परचर्चा में मौन धारण करना चाहिये वहाँ अधिक वार्ता द्वारा निन्दा की जाती है।

जहाँ परमात्मा का चिन्तन होना चाहिये वहाँ विषय चिन्तन, वस्तु-व्यक्ति का चिन्तन चलता है, जहाँ सेवा करनी चाहिये वहाँ मौन, एकाग्रता का प्रयत्न चलने लग जाता है। निवृत्ति के स्थान में प्रवृत्ति की उत्सुकता और प्रवृत्ति के मध्य निवृत्ति के लिये व्याकुलता आती है।

जिस किसी का बुद्धि रूपी साधन विचार प्रधान हो उसके लिये यह भी समझने की बात है हर एक मनुष्य यही प्रयत्न करता है कि सदा सुख प्राप्त होता रहे और दुःख आये ही नहीं परन्तु बड़े-बड़े प्रयत्नों के पश्चात् भी सुख चला ही जाता है और दुःख न चाहते हुए भी आ ही जाता है।

मनुष्य सदा सुखी रहने के लिये, दुःख से बचने के लिये कहीं धन का सहारा लेता है, कहीं परिवार की ओर देखता है, कभी देवताओं की शरण लेता है फिर भी निश्चिन्त-निर्भय नहीं हो पाता। रागी-द्वेषी, अभिमानों को निर्भयता निश्चिन्तता मिलती भी नहीं।

गुरु-वाक्यों द्वारा यही समझ में आ रहा है कि मानव को कभी ऐसा विवेक प्राप्त होता है जब किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के संयोग से प्रतीत होने वाले, सुख का लालच और वियोग से प्रतीत होने वाले दुःख का भय नहीं रह जाता; तभी निश्चिन्तता सुलभ होती है, बुद्धि स्थिर होती है और स्थिर बुद्धि द्वारा ही कर्तव्य की, स्वरूप की तथा भगवान की स्मृति रहती है।

प्रायः सभी धर्मोपदेशक विद्वान्-संत हमें भगवान की भक्ति करने का नाम-जप, संकीर्तन, पाठ, ध्यानाभ्यास आदि साधन करने को प्रेरित करते रहते हैं उसी के अनुसार हम यथाशक्ति करने लग जाते हैं फिर भी हमारे भीतर के दोष नहीं मिटते। हम अनेकों साधक कभी सुख की आसक्ति वश, कभी धन के लोभ वश, कभी व्यक्ति के अथवा देह के मोह वश, कभी पदाधिकार के अभिमान वश, कभी प्रमाद वश या कीर्ति असावधानी के कारण अनेकों पाप-अपराध करते रहते हैं।

यह भी समझने की बात है-हम सबको कोई कार्य करते हुए जोश के साथ यह होश रखना चाहिए कि कहीं पाप अपराध न बन जाये। हर साधक वहीं सुख चाहे जिसमें किसी को दुःख न हो।

जिस सुख के पीछे किसी को दुःख होगा वहीं पाप अपराध बन जायगा परन्तु अपने सुख के पीछे कब किसे दुःख हो रहा है, इसका ज्ञान होना भी सबके लिये सुगम नहीं है; कदाचित् कुशाग्र बुद्धि से ज्ञान हो भी जाय तो उस ज्ञान का अवसर पर ध्यान रखना सर्व साधारण के लिये सम्भव नहीं है।

हमें सन्त संगति में बैठकर बुद्धि रूपी साधन के द्वारा आत्म-निरीक्षण करते हुए यह भी ज्ञान हुआ कि भविष्य की चिन्ता अर्थात् आगे होने वाले लाभ एवं हानि का चिंतन करते हुए हमने वर्तमान कर्तव्य का पालन नहीं किया है। भविष्य में अनिष्ट होने की आशंका में व्यर्थ चिंतन करते हुए इतना अधिक समय नष्ट किया कि लौटाया नहीं जा सकता।

श्रवण एवं अध्ययन के द्वारा यह समझ में आया कि वर्तमान के सदुपयोग से ही भविष्य सुन्दर बनता है। अतः अपने भविष्य को सुन्दर, सुखद, शांतिप्रद देखना हो तो हम साधकों को वर्तमान में जो भी कर्तव्य हो उसे विधिवत् विवेकपूर्वक पूर्ण करना चाहिये। वर्तमान में जो व्यक्ति सामने हो उसी की सेवा करनी चाहिये और वर्तमान में जिस प्रकार की शक्ति, योग्यता अथवा वस्तु सुलभ हो उसी के द्वारा सेवा करनी चाहिये।

व्यर्थ वार्ता करते रहने से अप्राप्त वस्तु का, व्यक्ति का, परिस्थिति का चिन्तन करते रहने से, व्यर्थ चेष्टा में शक्ति का दुरुपयोग करते रहने से, आलस्यवश बैठे रहने से, असमय अनियमित सोते रहने से, कर्तव्य के अज्ञान से वर्तमान का दुरुपयोग होता है, भविष्य अन्धकार में कुण्ठित होता रहता है।

निरीक्षण करने पर दीखता है कि हम लोगों के जीवन में अनेकानेक दुखियों के प्रति दया करने के अवसर आये, मान-दान के, प्यार दान के, अब्ज दान के, धन दान के अधिकार के अवसर आये, यदि उन अवसरों में हम कर्तव्य का पालन करते तो जो उस समय की दृष्टि से जो भविष्य था जो कि आज वर्तमान है वह अवश्य ही हमारे सामने अति सुन्दर होता, अति सुखद होता।

आज जो हमारे सामने वर्तमान परिस्थिति है वह कभी भूतकाल में ही हमारे ही कर्मों द्वारा निर्मित हुई है और आज वर्तमान में जो कुछ हम कर्म कर रहे हैं, उन्हीं कर्मों द्वारा हमारे आगे आने वाला भविष्य परिस्थिति का निर्माण हो रहा है।

हम सभी साधक कुछ कहने के पहले, कुछ सुनने के पहले, कुछ देखने के पहले, किसी से सम्बन्ध ज़ेने के पहले, कुछ करने के पहले स्वतन्त्र हैं किन्तु कुछ कहने, कुछ सुनने, कुछ देखने, कुछ करने के पश्चात् उसके फल-भोग के लिये परतन्त्र हो जाते हैं, इसीलिये हम साधकों को सावधान होकर प्रत्येक कर्म करना चाहिए और इसकी पूर्ति के लिए ज्ञान-स्वरूप भगवान की शरण लेनी चाहिए।

भविष्य को सुन्दर-शुभ-सुन्दर बनाने के लिए हमें यह भी समझाया गया है कि :-

वर्तमान समय में जो छोटा या बड़ा कार्य सामने आये उसमें आलस्य न घुसने दो। विशेष आहार से बचो। अधिक लोगों से अनावश्यक मेल-मिलाप न बढ़ाओ। स्वभाव में उत्तेजना-उन्माद का अधिकार न होने दो। प्रपञ्च से बचते रहो। सब कार्य ठीक समय से नियमपूर्वक करो। विलासिता से बचो। मान-बड़ाई का मूल्य न बढ़ाओ। दूसरों को मान दो, स्वयं नम्रता धारण करो। कामना में मार्यादा रखो। छोटी-छोटी बातों में आनन्द की कल्पना न करो इन्द्रियों में, रसास्वाद में कभी न बढ़ें। अति भाग से बचो। दूसरों की निन्दा और बुराई न करो। दूसरों का अनिष्ट न चाहो। अकारण किसी वस्तु का संघय न करो। अयोग्य स्थानों में न जाओ, नियम का सदा पालन करो।

जब कभी भविष्य की चिन्ता हो तब के लिये हम सब को यह समझ लेना चाहिए कि चिन्ता, अहंता और मिले हुए में ममता करने से भविष्य तब ही सुन्दर बनेगा जब वर्तमान में प्राप्त समय का, शक्ति का, योग्यता का दुरुपयोग न करेंगे।

भविष्य को शुभ-सुन्दर, समुज्ज्वल बनाने के लिए हमें उसके द्वारा सेवा करना है जिसका भोग कर रहे हैं। यदि हमें प्यार तथा सम्मान प्राप्त है तो ध्यान रखना है कि अपने द्वारा दूसरों को प्यार मिलता रहे, सम्मान मिलता रहे, अधिकारी को अधिकार मिलता रहे। हमारे द्वारा किसी को दुःख न पहुँचे, सभी को यथोचित मर्यादानुसार हितप्रद सुख पहुँचता रहे।

कदाचित्त हम किसी प्रकार के अभाव से दुःखी हैं तब उसकी चाह का त्याग कर देना चाहिये जो दूसरों के पास है, अपने पास नहीं है। उसके लिए हमें दीन-ही नहीं बनना चाहिये, उसका लालच छोड़कर जो कुछ जितना भाग्य वश प्राप्त है उसी में प्रसन्न रहकर सेवा करनी चाहिए-प्रेसा करने से कभी न कभी स्वतः ही परमेश्वर के विधान से वही वस्तु हमें मिलेगी जिसकी कमी थी।

हमें किसी अभाव की स्मृति को लेकर भाग्य को कोसने दुःखी होने, किसी से डाह करने की भूल नहीं करनी है प्रत्युत अपना कर्तव्य पालन करते जाना है। जो कुछ शुभ कार्य कर करते हैं उसमें आलस्य-प्रमाद नहीं करना

है।

भविष्य को सुन्दर बनाने के लिये हमें अपने साथ लगे हुए दोषों का ही त्याग करना है। दोषों को पहिचानने के लिये सावधान रहना है। दोषों की उत्पत्ति वही से होती है जहाँ कमाना की उत्पत्ति होती है और हमें दोषों की भूमिका में बढ़ते हुए दुःख वही होता है जब कामना की पूर्ति नहीं होती है।

लोभ-मोह, अभिमान, काम-क्रोध, ईर्ष्या-द्वेष, मद-मत्सर आदि दोषों के कारण ही हानि का, वियोग का, अपमान का विषय, रसास्वाद की प्रतिकूलता से, हार्दिक ताप का दुःख होता रहता है।

हम जब दुःखदाई-दोषों के त्याग में सफल हो सकेंगे तभी भविष्य को सुन्दर बनाने के लिए हमें अनुकूल सामर्थ्य सुलभ हो जायेगा, समस्त देवी गुण हम में जागृत होंगे; उन्हीं के द्वारा हमारे सभी कर्म 'पुण्यमय' होने लगेंगे। दोषों के त्याग के साथ ही साथ हमें परमेश्वर पर अटल विश्वास रखना चाहिए और अपने आप जो कुछ भी उसे परमेश्वर के विधान से आया हुआ मंगलमय समझना चाहिए।

जिस प्रकार हम अविवेक-वश देह से निरन्तर सम्बन्ध मानते हैं, उसी प्रकार परमेश्वर से कभी न टूटने वाले सम्बन्ध को स्मरण रखना चाहिए।

वर्तमान का दुरुपयोग करने से अनेकों दोषों की वृद्धि होती है। दोषों की भूमि से दोषयुक्त प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।

भविष्य से मुक्त भक्त शान्त होने के लिए हमें वर्तमान में ही जो कुछ मिला है, उसे ममता छोड़कर समता धारण करनी चाहिए तभी मिले हुए का सदुपयोग हो सकेगा।

हम लोग अनेकों अभिमानों से अपने को बाँध चुके हैं। कही जाति का, कही कुल का, कही धन का, कही ऐश्वर्य का, कही रूप का, कही बल का, विद्या का अथवा तप का अभिमान ही नित्य प्राप्त परमात्मा का अनुभव नहीं होने देता है, अतः आस्तिक होकर अपने साथ अपना कुछ न मानकर अभिमान का त्याग वर्तमान में ही करना आवश्यक है।

जब अभिमान प्रबल हो तब उसकी ओर देखना चाहिए जो अपने से श्रेष्ठ हो, बड़ा हो, अपने से जिसके साथ शक्ति सामर्थ्य अधिक हो, अपने से छोटों को, गरीबों को देखकर अभिमान प्रबल होता है।

जब इच्छाएँ सतायें तब अपने से छोटों की ओर, अभाव-पीड़ितों की ओर देखना चाहिए, उनकी दीन दशा को देखकर अपनी स्थिति पर संतोष करना चाहिये।

अपने जीवन का भविष्य उज्ज्वल बनाने के लिए अपने निन्दकों से, अपने प्रतिकूल जनों से, हम साधकों को, नहीं भिड़ना चाहिए; शान्त मौन रहना चाहिए; निन्द्य यदि अपनी भूल का परिणाम है तब चुप रहकर सह लेना चाहिए। यदि निन्द्य झुठी है, अपना दोष नहीं है, तब भी साधक को शान्त रहने की ही सम्मति संत देते हैं।

प्रतिकूलताओं को सह लेने से तप हो जाता है। तप के द्वारा हमें बहुगुणित शक्ति सुलभ हो जाती है।

जो लोग अपने स्वभाव से विवश हैं, जो विवेकी नहीं हैं उन लोगों की बातों पर ध्यान ही नहीं देना चाहिए।

प्रतिकूलताओं के सामने शान्त रहना विवेकी-धीर-गम्भीर पुरुष का ही काम है।

हमें यह भी समझ लेना है कि जो कोई मेरे शरीर तथा मन के प्रतिकूल क्रिया करता है वह मुझे किसी न किसी दास्ता से ऊपर उठने की प्रेरणा देता है।

उस समय हमें प्रभु की कृपा समझनी चाहिए, परमेश्वर के गुणों का अवतरण मानना चाहिए, तब हम अपने विरोधी को क्षमा कर सकें, विपत्ति में धैर्य धारण कर सकें, क्रोध का दमन कर लें और शान्त प्रसन्न रहें।

संसार में वही शक्तिशाली हैं जो निष्काम रहकर क्षमाशील हैं, धैर्ययुक्त हैं, क्रोध रहित हैं।

कोई भी मनुष्य संग के प्रभाव से जैसा संकल्प करता है वैसा ही बन जाता है। अतः शुभ संकल्प का ही पक्ष लेना चाहिए।

दूसरों के साथ भोग सामग्री को देखकर उसी प्रकार उसी प्रकार सामग्री प्राप्त करने का संकल्प सहस्रों व्यक्ति करते हैं परन्तु किसी त्यागी तपोनिष्ठ को देखकर उसी प्रकार के त्याग करने का संकल्प कोई विरले ही पुरुष करते हैं। कदाचित् त्याग तप का संकल्प होता भी है तो उसके पीछे मान-भोग की चाह छिपी रहती है और त्याग भी वाट्य वस्तु का व्यक्तियों का होता है, लोभ-मोह, काम का त्याग कोई विरला ही कर पाता है।

हमारे लिए ज्ञान-स्वरूप गुरु का आदेश है, निर्देश है कि जो कार्य अभी वर्तमान में कर सकते हो उसे भविष्य के लिए न टालो। जिस कार्य की पूर्ति कभी भविष्य में हो सकेगी उसका वर्तमान में चिन्तन न करो। जो कार्य

स्वयं पूरा कर सकते हो उसके लिए अन्य किसी का सहारा न लो।

जिसके बन्धन से छूटना है उससे अपनत्व न रखो, उसके अधिकार के अनुसार सेवा कर दो। जो देना है वह दे दो, जो लेना है वह छोड़ दो, पाने की आशा न लगाओ।

हमें गुरु विवेक ने यह समझाया है कि सुविधा और संस्कार के अनुसार तीर्थ-यात्रा करने के प्रथम ही या तीर्थ यात्रा कर चुके हो तो उसके पश्चात्-अब सावधान होकर माता-पिता को तीर्थ समझो, पति-पत्नी भी परस्पर एक तीर्थ ही हैं। कोई अतिथि आ जाय तो उसे तीर्थ मानकर सेवा करो। आचार्य को, दया को, दान को शु-तीर्थ मानो। गुरु को पावन तीर्थ-स्वरूप मानकर मन को भी तीर्थ बनाने के लिए निर्मल बना लो। सब तीर्थों का सेवन करते हुए परमेश्वर के नामों को तीर्थराज समझो; अन्त में सब कुछ के प्रकाशक आत्मा को नित्य-प्राप्त तीर्थ समझ कर उसी में बुद्धि स्थिर कर परम-पावन हो जाओ।

निर्वन, निर्धन, श्रद्धाहीन को बाहर तीर्थ यात्रा का फल नहीं मिलता। आलसी-प्रमादी, भोगी, स्वार्थी को निकटस्थ तीर्थ-सेवन का सौभाग्य सुलभ नहीं होता।

निरीक्षण करते हुए यह भी दर्शन मिला कि कोई भी स्वार्थी प्राणी परिवार से, पड़ोसी से, समाज से, संसार से अपनी ही पूर्ति चाहता है। स्वार्थी की चाह को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि संसार की सृष्टि मानों उसी की पूर्ति के लिए हुई है। कदाचित् इस प्रकार की स्वार्थपरता हम साधकों के भीतर हो तो उसका त्याग करना चाहिये।

अपनी कामना पूर्ति का पक्ष छोड़कर हमें अपने द्वारा दूसरों की पूर्ति करते हुए स्वार्थ पूर्ति का प्रयाश्चित् करना चाहिये। जिस प्रकार दूसरों से मान, प्यार, अधिकार सम्पत्ति अथवा किसी प्रकार का सुख लिया है उसी प्रकार दूसरों को देते रहना चाहिये।

हमें समझाया गया है कि परमेश्वर से कुछ न चाहो क्योंकि परमात्मा की प्रति से बढ़कर और कुछ है ही नहीं। जगत् से कुछ न चाहे क्योंकि हमारी परमतृप्ति के लिये परम-शान्ति देने के लिए जगत् के पास भी कुछ नहीं। जगत् से कुछ न चाहो क्योंकि हमारी परम तृप्ति के लिये परम-शान्ति देने के लिए जगत् के पास भी कुछ नहीं है।

हमें ऐसा विवेक प्राप्त करना चाहिए जिससे कर्तव्य की स्मृति बनी रहे। हम ऐसा कुछ न करें जो अकर्तव्य है। हमें स्वरूप की स्मृति बनी रहे जिससे देहाभिमान से बच सकें और हमें अपने प्रभु की स्मृति बनी रहे जिससे मिली हुई देहादिक वस्तुओं की आसक्तियों से दूर रह सकें। यह सब कुछ वर्तमान में ही करना है।

कई बार सोचा है मैंने याद तुम्हारी क्यों आती है।

बार-बार चुपके से आकर व्याकुल मुझे बना जाती है।।

जगतीतल के कोलाहाल में मैं जब खो देता अपने को।

अपने में जग को रख लेता सत्य समझ लेता सपने को।।

तब यह बतलाने कि जगत के सुख में कोई सार नहीं है।

तब यह समझाने कि तुम्हारा इस पर कुछ अधिकार नहीं है।।

देव तुम्हारी यही शुभ-स्मृतिम सुख में ही दुःख दरसाती है।

कई बार सोचा है मैंने याद तुम्हारी क्यों आती है।।

जब बसन्त की सुरवद समीरण में तरु झूल-झूम जाते हैं।

कोयल कहीं कूकती है तो भौर कहीं गुन-गुनाते हैं।।

चारों ओर प्रकृति की मादकता मन को माहित करती है।

याद तुम्हारी उसी समय मेरे मन में विराग भरती है।।

होती नहीं सदा वह अच्छी बात कि जो मन को भाती है।

कई बार सोचा है मैंने याद तुम्हारी क्यों आती है।।

जहाँ कि लद जाती है जड़ता मेरी पावन चेतनता पर।

जहाँ विषमता विजयी होने चलती है मेरी समता पर।।

मैं सत्याश्रय छोड़ परिस्थितियों के आगे जब झुक जाता हूँ।

टुकड़ाया जाता हूँ तब तो शान्ति शरण में ही पाता हूँ।।

तुम जब दूर गए लगते हो तुमको याद निकट लाती है।
कई बार सोचा है मैंने याद तुम्हारी क्यों आती है।।

अपना अध्ययन

गुरु विवेक द्वारा निरीक्षण करने पर यह भी समझ में आया कि हम सबके जीवन में किसी प्रकार की हानि का दुःख प्रतीत होता है, वह अपने द्वारा होने वाली भूल के कारण है। जितना भी ह्रस्व का दुःख है वह यथार्थ सत् तत्त्व-विषय के अज्ञात कारण हैं। भूल भ्रांति आन का होना साधन की अशुद्धि है।

जिस समय जो कुछ करना चाहिये उसकी विस्मृति ही भूल है। जहाँ तक किसी भी वस्तु से, व्यक्ति से, अवस्था से, परिस्थिति से हमारा सम्बन्ध है वहाँ तक सभी कुछ के प्रति हमारा कर्तव्य निश्चित है कर्तव्य की विस्मृति से अगणित दुःख देखने पड़ते हैं। स्मृति बनी रखने के लिये बुद्धि योगी होना परमावश्यक है। बुद्धि योग भगवद्-कृपा से सुलभ होता है। कब बोलें ? क्या बोलें ? कैसे बोलें ? कितना बोलें ? इसी प्रकार क्या सुनें ? क्या लें ? कैसे लें ? कितना लें ? क्या खायें ? कितना खायें ? कैसे खायें ? क्या दें ? कैसे दें ? कितना दें ? कैसे दें ? कब क्या करें ? कब क्या न करें ? बुद्धि-योगी ही निर्णय कर पाता है।

हम अनेकों साधक सुनते पढ़ते समझते हुए, समझाते हुए भी प्रायः अवसर पर अभ्यास आदत के अनुसार कर्म करते रहते हैं, समयानुसार जो करना चाहिये वह नहीं कर पाते जो न करना चाहिये वह कर जाते हैं क्योंकि हमारे अन्तःकरण रूपी साधन शुद्ध नहीं हैं।

दोषों के रहते मुक्ति, भक्ति, शान्ति नहीं मिलती।

सभी मनुष्य अपनी उन्नति सद्गति चाहते हैं परन्तु अभिमान के रहते सर्वतोमुखी विकास में उन्नति में बाधाएँ रहती हैं, निराभिमानी में ही सब प्रकार का विकास होता है।

एक संत ने बताया कि जो न करने वाली बातें हैं वह सभी के लिए मान्य हैं, उकने न करने में सभी का कल्याण है।

जो करने वाली बातें हैं वह सबके लिए एक समान आवश्यक नहीं हैं।

यह बात भी स्मरण रखने योग्य है कि सांसारिक-वस्तुओं, व्यक्तियों से संबन्ध जोड़कर अभिमान, मोह से रहित नहीं हो सकते किन्तु ममतावश संबन्ध तोड़ना भी सुगम नहीं है।

सुख के लोभ वश ही वस्तुओं, व्यक्तियों से संबन्ध जोड़ा जाता है, मोह हो जाता है। रागवश ही प्राणी अपना विनाश देखता है।

मोही, लोभी, अभिमानी को सुख की आशा से ही प्रतिकूलता में क्रोध आता है ईर्ष्या, द्वेषादि विकार प्रबल होते हैं। संत ने हमें समझाया है कि जिससे सम्बन्ध हो, उसके प्रति कर्तव्य-परायण बने, बदले में कुछ न चाहो। बन्धनों से मुक्ति के लिए केवल संग का, सम्बन्ध का त्याग कर दो और प्रभु के योगानुभव के लिये केवल उन्हें ही अपना मानो, अन्य किसी की ओर न देखो, किसी का आश्रय न लो। किसी को अपना न समझो।

भगवान् ऋषभदेव के पुत्र बाहुबल अपने बड़े भाई से युद्ध में विरत होकर मुनि हो गये, अपने छोटे भाई जो कि उनके प्रथम ही मुनि हो चुके थे, उन्हें वन्दन करने गये क्योंकि बड़े होने का अभिमान था। कितने ही वर्षों तक खड़े होकर तप करते रहे फिर भी उन्हें केवल ज्ञान की सिद्धि नहीं हो सकी। उनकी भगिनी ने उनके निकट जाकर एक गीत गाया-

मेरे भाई गज से उतरो गज चढ़ि ज्ञान न होई।

गीत का आशय यही था कि आप अभिमान-रूपी हाथी से जब तक नहीं उतरोगे तब तक केवल ज्ञान की प्राप्ति नहीं होगी। तपस्वी मुनि ने विचार किया और अपने भीतर अभिमान को देखा उसी क्षण अपने छोटे भाई मुनि से मिलने की यात्रा की, जब उनके आगे अभिमान त्याग कर वन्दना की, तभी केवल ज्ञान की प्राप्ति हो सकी।

ब्रह्मर्षि वशिष्ठ जी के समक्ष महातपस्वी विश्वामित्र को जब तक अभिमान रहा तब तक ब्रह्मर्षि पद नहीं मिला। गृहस्थों को कुल का, विद्या का, रूप का, धन का, अधिकार का, बल का, किसी गुण विशिष्ट का अभिमान रहता है प्रायः साधु, संन्यासी, विरागी, उदासी को भी कहीं त्याग का, कहीं तप का अथवा ज्ञान का, सिद्धियों का अभिमान रहता है।

जल में स्नान करने से भंगी चाण्डाल भी शुद्ध हो जाता है उसकी देह का मेल छूट जाता है। परन्तु उच्च-कुल

वाले विद्वान् के भीतर रहने वाले लोभ, अभिमान आदि का मेल छूट जाना, हृदय में सरलता पवित्रता का आना दुष्कर होता है।

साधक के अहंकार में अभिमान की वृद्धि ही साधना-पथ में बढ़ने नहीं देती है। जिस प्रकार भोगी प्राणी में धन का, बल का, विद्या का, कुल का, रूप का अभिमान बढ़ता है उसी प्रकार साधक में तप का, व्रत का, जप-कीर्तन, पूजा-पाठ का, त्याग का, ज्ञान का अभिमान सद्गति में बाधक बनता है।

साधक के सम्मुख कभी ऐसा अवसर आता है जब अपनी कमी का दुःख होता है और सभी प्रकार के बलों का प्रयोग करके निराश होता है तभी अभिमान रहित होकर सर्व-समर्थ की शरण लेता है और दुखी होकर प्रार्थी बनता है, तभी कृपा बल के आश्रय वह पूर्णता प्राप्त होती है जो अभिमान की सीमा में कभी सुलभ न ही हुई थी। इसीलिए भगवान के भक्त भगवान के नामाश्रय की महिमा गाते रहते हैं।

करउ कहीं लौं नाम बड़ई। राम न सकई नाम गुण गाई।।

भगवान के नाम का अवलम्ब वह सिद्धि प्रदान करता है कि साधक को साक्षात् भगवान के दर्शन की आवश्यकता ही नहीं रह जाती, भगवान का नाम अति सुगम है भगवान के दर्शन अति कठिन हैं। अवश्य ही भगवान उसी पतित को मिलते हैं जो पुनः पाप नहीं करता। पुनः पाप न करने वाला पतित नहीं रह जाता।

जो भगवान की शरण ले चुका, वह किसके आगे दीन बनेगा ? जिसने सब कुछ भगवान का मान लिया वह सिके आगे अभिमान करेगा ?

जब सद्गुण भगवान के न समझकर अपने मान लिये जाते हैं तभी गुणों का अभिमान बढ़ता है, गुण के अभिमान बढ़ता है, गुण के अभिमानी को ही दूसरों के दोष दीखते हैं।

अभिमान की अधिकता में ही अनादर का भय तथा मान की चाह होती है। अभिमान रहते चित्त शुद्ध नहीं होता। अशुद्ध चित्त में ही भोग-वासना अथवा काम-क्रोधादि दोषों की उत्पत्ति होती है। हमने सन्त से सुना है कि चाहों के रहते चित्त शुद्ध नहीं होता। चित्त के शुद्ध हो जाने पर वही होता है जो न्यायतः होना चाहिये, वही नहीं होता जो नहीं होना चाहिये।

हमें अपना निरीक्षण करते रहना चाहिये। अहं-कृतियों का विरोध करना चाहिए। अहंकार के समर्पित होने पर कर्तापन नहीं रह जाता। शरणागत साधक अपने द्वारा सब कुछ होता हुआ देखता है। विवेकी साधक को तन, मन, चित्त अथवा वस्तु, योग्यता, बुद्धि आदि सब उसी परम प्रभु से ही दीखते हैं, अपना कुछ नहीं दीखता। दादू कर्ता मति बनो, कर्ता और कोय।

करता है सो करेगा, तू जनि कर्ता होय।।

यह भी समझ में आ रहा है कि चाहे मान का सुख हो या अधिकार का सुख हो, संयोग का सुख हो अथवा भोगों का सुख हो या लाभ सुख हो-किसी भी प्रकार के सुख की आसक्ति से बँधा हुआ व्यक्ति न स्वस्थ है, न शान्त है, न पवित्र ही है।

हम साधकों में किसी भी प्रकार की आसक्ति प्रियतम प्रभु के योग में जगत्-भोग का दर्शन करती है, यदि आसक्ति का अन्त हो जाये तो प्रभु के प्रति पूर्ण-अनुरक्ति इस जगत् में प्रभु का दर्शन कराती है।

परम प्रभु के प्रति प्रीति की कमी में ही आसक्ति तथा लोभ-मोह आदि दोषों का दुर्वास रहता है। प्रीति की पूर्णता में ही दोषों का अन्त होता है।

सन्तों-विद्वानों के संग से तथा सद्गुणव्याध्ययन से हम जानते हैं कि आसक्ति के रहते शान्ति, मुक्ति, भक्ति, स्वाधीनता प्राप्त नहीं हो सकती, फिर भी आसक्ति का त्याग नहीं कर पाते।

विचार करने पर यह ज्ञात हुआ कि हम जानते हैं बुद्धि के द्वारा और सुव्रासक्त होते हैं मन के द्वारा। जब तक बुद्धि का शासन मन पर नहीं होगा तब तक सारा ज्ञान बुद्धि में भरा रहेगा। मन की आसक्ति का त्याग न हो पायेगा। आसक्ति का त्याग जब तक न होगा तब तक ज्ञान का भोग होगा उस ज्ञान से योग न होगा। इसी प्रकार भावों का भोग होगा, भक्ति योग न होगा। कर्म का भोग होगा, कर्म योग न होगा।

जो परम विवेकी पुरुष हैं, जो ममता-मोह रहित निष्काम होकर अपनी अन्तरात्मा में शान्त सन्तुष्ट हैं उनके संग से, उनके विवेक के द्वारा ही साधक ममता, कामना तथा वस्तुओं, व्यक्तियों के प्रति दत्तात्म्य भाव का त्याग कर पाता है। कृपा पर निर्भर रह कर साधक पतन के अवसरों अदृश्य देवी सहायता प्राप्त करते हुए उन्नति करता है।

सन्त में हमें समझाया है कि इस संसार सागर में कहीं रहो, भगवत्-प्रेम की डोरी पकड़े रहो, जब आवश्यकता समझना तब उसी डोरी के सहारे प्रभु के साबिन्ध्य को प्राप्त कर लेना ।

प्रायः निराश, उदास, पराधीन, दुखी, अपमानित ही प्रभु-चिन्तन से सफलता प्राप्त करते हैं।

विषयों के संयोग से मलीन वृत्ति उत्पन्न होती है अतः चित्त को भीतर ही शान्त करना आवश्यक होता है। तीव्र इच्छा, प्रबल अभिलाषा करना ही प्रकृति से याचना करना है उसकी पूर्ति अवश्य होती है इसीलिए अपनी इच्छाओं का दमन करो, अभिलाषा का निरीक्षण करो। वही अभिलाषा करो जिसकी पूर्ति परम प्रभु से होती है-ऐसी गुरु सम्मति है।

प्रभु अनेक रूपों में आकर के चले गए,
मैंने कभी जी भर के देखा नहीं है।
सोये थे हम, वो जगा करके चले गए,
मैंने कभी जी भर के देखा नहीं है। 11 ।।
भूल गये उनके जब हम इस संसार में,
अपने को खो बैठे किसी के भी प्यार में।
असत् को सत् मान लिया हमने अविचार में,
साधन दिखता नहीं था मोह-अब्धकार में। ।
वही हमें सब कुछ बता करके चले गए,
मैंने कभी जी भर के देखा नहीं है। 12 ।।
जहाँ बने भोगी हम वही शक्तिहीन हुए,
जिसमें सुख माना था उसके आधीन हुए।
जितना अभिमान बढ़ उतने ही दीन हुए,
जब निराश होकर हम दुखी उदासीन हुए। ।
दुखहारी दुख को मिटा करके चले गए,
मैंने कभी जी भर के देखा नहीं है। 13 ।।
दया हुई तब अपूर्व प्यार मिला मान मिला,
कृपा हुई तभी हमें प्रभु से ही ज्ञान मिला।
शुभ-सुन्दर जो भी मिला प्रभु से ही दान मिला,
जितना जनाया बस उतना ही जान मिला। ।
जो न कभी देखा था, दिखा करके चले गए,
मैंने कभी जी भर के देखा नहीं है। 14 ।।
भूल से हम समझे थे सभी कुछ हमारा है,
अब मतो सब दीख रहा प्रभु का पसारा है।
अहंकार को तो अभिमान सदा प्यारा है,
इसे त्याग पाऊँ बस उन्हीं का सहारा। ।
पथ में जहाँ फिसले उठा करके चले गए,
मैंने कभी जी भर के देखा नहीं है। 15 ।।
यह मन का भ्रम, उनका आना जाना कैसा,
जिसमें हम, जो हममें, खोज लगाना कैसा।
जो अप्राप्त है ही नहीं उसका पाना कैसा,
जो कि जानते सब कुछ उन्हें सुनाना कैसा। ।
पथिक में ही अपने को लखा करके चले गए,
मैंने कभी जी भर के देखा नहीं है। 16 ।।

भगवान की कृपा कैसे हो ?

सहज ही हम लोग अपनी दुर्बलताओं को न देखकर भगवान की कृपा पर अपनी सफलता का भार छोड़ देते हैं। जब कभी अपने-अपने प्रयत्न से निराश होते हैं तब यही कहकर सन्तोष कर लेते हैं कि 'अपने किये तो कुछ होना नहीं है, भगवान की अथवा सद्गुरु की कृपा होगी तभी मनुष्य सद्गति, परमगति प्राप्त कर सकता है। कृपा की प्रतीक्षा करने वालों को स्मरण रखना चाहिए क्योंकि सन्त का ही यह कथन है - 'मन वच कर्म छाड़ि चतुराई। भजतहि कृपा करहिं रघुराई।।' जो साधक मन से, वाणी से कर्म करते हुए चतुरता का चालाकी का त्याग करके भजन करता है उसी पर भगवान कृपा करते हैं। जब कृपा करते हैं तभी सन्त-संग सुलभ होता है तब संत संग सुलभ होता है, तभी सत्-असत् का, पाप-पुण्य का, कर्तव्य-अकर्तव्य, धर्म-अधर्म, जड़-चेतन का अथवा स्व का तथा पर का विवेक होता है। विवेक होने पर ही मोह की, भ्रम की, भ्रांति की, निवृत्ति होती है, मोहाज्ञान भ्रम की निवृत्ति होने पर ही परमात्मा के प्रति अनुराग जागृत होता है। अनुराग से ही भगवान मिलते हैं।

हम साधकों को जब कभी सन्त-महात्मा का सुसंग मिले तब भगवान की कृपा समझनी चाहिये।

जब दोषों के त्याग का, दान का तथा निष्काम रह कर सेवा का संकल्प प्रबल हो तब कृपा समझना चाहिये। जब कभी धन की हानि हो, प्रिय सम्बन्धी का वियोग, अपमान हो, सुख-भोग के पीछे दुःख हो, तब भी प्रभु की कृपा ही समझना चाहिये क्योंकि जो साधक प्रथम कृपा से मिले हुये सत्संग द्वारा विवेकी नहीं बनता और विवेक द्वारा मोह का, लोभ का, अभिमान आदि दोषों का त्याग नहीं करता, उस पर भगवान के विधान से प्रतिकूलताओं के रूप में कृपा उतरती है। हम साधकों को जब प्रतिकूलताओं का दुःख हो तब कृपा समझ कर वियोग के दुःख में मोह का त्याग करना चाहिए। हानि के दुःख में लोभ का त्याग करना चाहिए, अपमान, अपयश के दुःख में अभिमान का त्याग करना चाहिए। किसी प्रकार के दुःख में सुराशक्ति का त्याग करना चाहिये। सभी प्रकार की आसक्ति की कामना का त्याग करते ही तत्काल में ही शांति मिलती है।

बुद्धि दृष्टि का सदुपयोग

ओ देखने वाले तू अपने ज्ञान को भी देख ले।
 उस निज स्वरूप ज्ञान के अज्ञान को भी देख ले।।
 इन्सान में हेवान को, शैतान को भी देख ले,
 ते ऐसी दृष्टि प्राप्त कर भगवान को भी देख ले।
 सुनते हुए कहते हुए सब जानते हुए भी,
 तू अपने अहंकार के अभिमान को भी देख ले।।
 परमात्मा के ध्यान में जब मन नहीं लगता है,
 वह है लगा हुआ कहीं उस ध्यान को भी देख ले।
 जिसमें सभी आरम्भ हैं और अन्त हैं जिसमें ही,
 उस सर्वमय अनन्त शक्तिमान को भी देख ले।।
 नश्वर को सत्य मानना यह तो है अविद्या ही,
 विद्वान है तो नित्य विद्यमान को भी देख ले।
 जो कुछ तुझे मिला है दाता है कोई उसका,
 उसकी दया को और उसके दान को भी देख ले।
 कितना कुशल है वह प्रभु अपने को छिपाने में,
 तू पथिक उस महान के सुविधान को भी देख ले।।

संग का प्रभाव

किसी भी वस्तु तथा व्यक्ति एवं विषय के संयोग से प्रतीत होने वाली प्रसन्नता अथवा उसमें दीखने वाला सुख ही हम सबको रागी-द्वेषी बनाती है।

जब तक हम साधक अविनाशी सद्चित् स्वरूप आत्मा की महिमा को नहीं जानते, आत्मा में ही बुद्धि को स्थिर नहीं करते, तब तक विनाशी सुख के रागी बने रहते हैं। आत्मा के ज्ञान और उसी के निरन्तर चिन्तन-ध्यान से

सांसारिक राग-द्वेष दूर होता है।

संसार में यदि परमावश्यक ज्ञान प्राप्त करना है तो वह केवल आत्मा का ही ज्ञान है, इसी ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है।

मानव जीवन में यदि विश्वास करना है तो आँखों से न देखने वाले, सुने हुए अविनाशी नित्य प्राप्त परमेश्वर परमात्मा पर विश्वास करना है।

संसार तथा निज स्वरूप के ज्ञान द्वारा बन्धनों से, दुखों से मुक्ति मिल जाती है और परमात्मा पर विश्वास करने उसी की शरण लेने से भक्ति मिल जाती है।

निज-स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिये और परमात्मा परमेश्वर पर विश्वास करने के लिये उसी का संग करना आवश्यक है जो आत्म-ज्ञानी हो और परमात्मा में अटूट-विश्वास रखने वाला हो, केवल आत्मा परमात्मा के विषय में पढ़ने-सुनने मात्र से ज्ञान की प्राप्ति, विश्वास की दृढ़ता नहीं होती।

यथार्थ आत्म-ज्ञानी एवं भक्त की उपासना से सेवा सुसंग के प्रभाव से ज्ञान, विश्वास दृढ़ होगा। विशेष रूप से संग का ही प्रभाव पड़ता है। किसी को विनम्र होना है तो किसी विनम्र-पुरुष का संग करना चाहिए। किसी को अपने में उदारता लानी है तो उदार, दानी से प्रीति करनी चाहिये।

डाक्टर होने के लिए डाक्टर का संग, प्रोफेसर होने के लिये प्रोफेसर का संग, विज्ञानी होने के लिए विज्ञानी का संग आवश्यक है उसी प्रकार भक्त होने के लिये भक्त मुक्त पुरुष की संगोपासना अनिवार्य है।

यदि कोई प्राणी कामी, क्रोधी, लोभी, मोही, ईर्ष्यालु, द्वेषी, अभिमानी बना है तो संग के प्रभाव से बना है। कोई व्यसनी, विलासी, चोर, डाकू, पहलवान, ईमानदान, बेईमान बना है तो संग से बना है।

हम साधकों को जैसा बनना है या जैसा होना है उसी प्रकार के आदर्श पुरुष का संग करना है। किसी संग का विरोध भी किसी के संग अनुरोध से ही सम्भव हो जाता है।

सुसंग की महान महिमा है। असत्-संग के प्रति होने वाली आसक्ति केवल उपदेश सुनने-पढ़ने से दूर नहीं होती। आसक्ति ऐसा अभेद कवच है कि इसमें बड़े-बड़े शास्त्रों के तीखे शब्द-बाण टूट जाते हैं किन्तु वही आसक्ति जब विरक्त सन्त-महात्मा एवं अनुरागी भक्त के प्रति हो जाती है तब सुगमता से असत् का अभाव समाप्त हो जाता है, भक्ति-मुक्ति का द्वार खुल जाता है। परन्तु सावधान रहना होगा कि साधक कहीं सन्तों, महापुरुषों, भक्तों के वाटय नामरूप में ही आसक्ति होकर वही न अटक जाये उनके नाम, रूप का भोगी न बन जाये प्रत्युत उन संतों, भक्तों के द्वारा ही, उनके स्वरूप का और अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करे।

साधक आँखों से उनके वाटय रूप का दर्शन करे मन से उनके मन का संग करे और बुद्धि से उनके ज्ञान स्वरूप का संग करे-इस प्रकार सर्वांग सत्-संग के प्रभाव से साधक असत् संग से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

स्वरूप का अर्थात् आत्मा का ज्ञान, बुद्धि-प्रधान मानव को ही हो सकता है, बुद्धि-रहित पशु को नहीं होता। मैं हूँ का बोध प्रत्येक मनुष्य को हो रहा है किन्तु 'मैं हूँ' के मध्य में माया आ गई है उसी के कारण मायिक रूप के साथ मिल कर 'मैं हूँ' का ज्ञान नहीं है बल्कि अहंकार है।

'मैं हूँ' के मध्य में जाति, नाम-रूप, सम्बन्ध, सुख-दुःख आदि आ जाने से अहं का आकार बन जाता है वही अहंकार दूसरे के समक्ष अभिमानी बनकर रागी-द्वेषी अनेक रूप धारण करता रहता है यह जीव स्वरूप को भूल कर पूरा बहुरूपिया बना घूमता है।

मैं पुत्र हूँ पति हूँ पिता हूँ बन्धु हूँ पुत्री हूँ पत्नी हूँ माता हूँ मैं सास हूँ देवरानी-जेठानी आदि हूँ मैं ब्राह्मण हूँ क्षत्रिय हूँ वैश्य अमुक जाति का, सुखी हूँ दुखी हूँ मूर्ख या विद्वान् हूँ पापी हूँ या पुण्यात्मा-धर्मात्मा हूँ सेवक हूँ या मैं स्वामी हूँ गुरु हूँ शिष्य हूँ मैं काला हूँ गौरा हूँ मोटा हूँ या दुर्बल हूँ-ऐसा परिचय देने वाला बहुरूपधारी जीवात्मा वास्तव में केवल ज्ञान-स्वरूप है परन्तु मैं हूँ के मध्य में माया का आ जाना ही बन्धन में जकड़ जाना है।

मैं हूँ के मध्य में जो कुछ मिल गया है उसी को निकाल अपने आपको केवल ज्ञान-स्वरूप अनुभव करना ही कैवल्य पद प्राप्त करना है।

मैं हूँ के बीच में जो कुछ भी है वही माया है। इस माया के संग से ही हम साधक अपने स्वरूप को भूल रहे हैं; मायिक रूपों के ही रागी-मोही, अभिमानी बन रहे हैं; इसी बीच में रहने वाली माया के द्वारा भोग हो रहा है, भोग के साथ अज्ञान-रूपी-रोग चल रहा है। इस अज्ञान-रूपी महारोग की सीमा में अनेकानेक उपाधि-व्याधि चल

रही है।

भगवान भी यही निर्णय दे रहे हैं सत्य ज्ञान से विपरीत जो अज्ञान से माया में ही मोहित हैं वे मूर्ख कल्याण से भ्रष्ट ही हैं।

जब हम भगवान से कल्याण की बात पूछते हैं तो यही उत्तर मिलता है 'मुझ आत्मा अर्थात् परमात्मा' में मन लगा कर मुझमें ही बुद्धि स्थिर करके आशा, ममता, अहंता रहित होकर कर्तव्य-कर्म करते रहने से कल्याण निश्चित है।

भगवान से जब हम मन की निन्दा करते हैं तब भगवान का कहना है कि जहाँ मन लगा है वही पर उसके परिवर्तन का, विनाश का प्रत्येक सुख के अन्त में मिलने वाले दुःख का तथा संग से उत्पन्न होने वाले अनेकों दोषों को देख-देखकर वहाँ से मन हटाते रहो और जिस आत्मा-परमात्मा में मन नहीं लगता है वही पर उसके अविनाशी स्वरूप का चिदानन्द स्वरूप का सदा निर्विकारी रहने आदि गुणों का दर्शन मनन करते हुए मन को लगाओ इस प्रकार वैराग्य अभ्यास से मन स्थिर हो जायेगा।

मन तो साधन है उसे भोगों में उपयोग करते रहने के कारण अशुद्ध हो गया है अब इस मन-रूपी साधन को भोग सुखों के लिए उपयोग न किया जाय उस साधन को ईश्वर-स्मरण में लगाया जाय तथा स्वार्थ के विरुद्ध सेवा में लगाया जाय तो यह मन-रूपी साधन शुद्ध हो जायेगा।

सन्तों से बड़े महत्व की बात हमें मिली है कि अहं में अर्थात् अपने आप में आत्मा-परमात्मा को पहचानो और आत्मा-परमात्मा में ही अहं का अनुभव करो।

बार-बार मनन करो 'यह देह मैं नहीं हूँ, देह मेरी नहीं है क्योंकि इस पर अपना अधिकार नहीं है।

स्थिर आसन में बैठकर विचार करो, जड़ क्या है? चेतन क्या है? इन दोनों में मेरी जाति किससे मिलती है? ज्ञान चेतन है चेतन ही ज्ञान है, ज्ञान जड़ नहीं है। ज्ञान में जड़ शरीर भर जाता है, सम्बन्ध भर जाते हैं। ज्ञान में जो रख लिया जाता है, अहं उसी मय प्रतीत होता है।

अहं रूपी ज्ञान में कुछ रख कर 'मैं' 'मेरा' बन जाता है। सन्तों से मैंने सुना है कि :-

जिस किसी को रखकर मैं कहते हो उसेस अलग होकर मैं का अनुभव करो।

सोचो, जब अपने में कुछ न रक्खा था कुछ भी स्वीकार नहीं किया था तब मेरा स्वरूप क्या था?

अहं के आगे जो भी दृश्य दीखता है वह विनाशी माया का दृश्य है, है अहं के पीछे अविनाशी आश्रय है।

अहं में जो स्वीकार कर लिया है उसे हटा देने पर जो शेष रहेगा वही आत्मा है केवल ज्ञान-स्वरूप है।

सांसारिक संयोग-वियोग की स्मृति ने जिसके नित्य-योग की विस्मृति कर दी है। उसे अपने आप में अनुभव करो।

भोग की इच्छा रहते ही कुछ करने की इच्छा है। मरने का भय है पाने का लालच है। योग की अभिलाषा प्रबल होने पर भोगेच्छा नहीं रहती।

आसक्ति, ममता, लोभ, मोह मिटे बिना आत्मा का बोध नहीं होता। लज्जा घृणा, भय, तृष्णा के रहते साधन में सद्गति नहीं होती। जो मन धन में, परिवार में लगा है, वह धरोहर में है, भगवान में कैसे लगेगा?

लाख लेखर दो विषयासक्त मनुष्यों का कुछ न कर सकोगे, पत्थर की दीवाल में लोहे की कीला टूट जायेगा यह बात मैंने एक सन्त से सुनी थी।

भगवान के मतानुसार धीरे-धीरे अभ्यास करते हुये धैर्य युक्त बुद्धि द्वारा मन को परमात्मा में लगाना चाहिये अन्य किसी का चिन्तन नहीं करना चाहिये।

मन की वृत्तियों का निरीक्षण करो मन को हठपूर्वक रोकने का प्रयास करना कष्ट कर साधना है, यह सुगम साधन है कि मन को अपना ना मानकर मन से अपने को अलग करके मन को देखो-ऐसी सन्त सम्मति हैं मन का निरीक्षण करने पर यह ज्ञान होगा कि मन में वही स्मृतियाँ उदय होती हैं, जिनको कभी स्वीकार किया है। जो कभी सुना है या कभी देखा है या जिसका सुख या दुःख रूप में भोग किया है, उसी की याद आती है इसी को साधक जन मन की चञ्चलता कहते हैं।

मन को रोकने की अपेक्षा वृत्तियों के समूह वाले मन से सम्बन्ध नहीं रखना योग सिद्धि का उत्तम उपाय है। अनेकों प्रकार के ध्यानाभ्यासों में शरीर को प्राणों की गति मन की वृत्तियों को, चित्त की दिशाओं को बुद्धि की विषमता को अहंकार के संग्रहालय को साक्षी की भाँति देखना असंग होने का यह सहज अभ्यास योग है।

तेजस्वी होने का उपाय

सन्त ने हमें यह भी समझाया कि जो मनुष्य दूसरों से ईर्ष्या नहीं करता, जो दूसरों को लाभ पहुँचाता है, जो बड़ों का सम्मान करता है, जिसका मन निर्दोष होता है, जो परमेश्वर की कीर्ति का, गुणों का, लीलाधाम का मनन करता है, जो शुभ, सुन्दर, पवित्र का दान करता है, साथ ही जो श्रद्धेय मूर्ति का चिंतन करता है, जो साधु-सेवी है, जो प्रलोभन से बचता है, जो विवेकी है, सदाचारी है, वही जीवन में शक्तिशाली होता है, वही तेजस्वी होता है।

हमें सन्त का यह भी निर्णय मिला-जो व्यक्ति बिना दी हुई वस्तु उठा लेता है, जो चोरी का माल स्वीकार करता है, जो चोरी की प्रशंसा करता है, जो चोरी करके प्रसन्न होता है, जो माता-पिता की जीविका तोड़ता है जो, साधु, ब्राह्मणों, देव यज्ञ में व्यय होने वाले धन का भोग करता है, जो गौः सेवा तथा धर्म के निमित्त निकले हुए धन से अपनी इच्छाओं की पूर्ति करता है, जो दूसरों का लाभ न होने में हर्ष मानता है, जो दूसरों के लाभ में दुःख मानता है और बाधा डालता है जो व्यापार में लाभ होने के लिए दुर्भिक्ष की या राष्ट्र युद्ध की याचना करता है उसे जो कुछ भोग सुख मिलता है वह बहुत ही अल्प होता है। अधिक नहीं टिकते हैं वही तेजहीन हो जाता है।

उत्कृष्ट योग देने वाले पुण्यवानों के कृत्य

हमने वीतराग सन्त के वचनों में यह भी सुना कि जो मनुष्य अपने भोग के लिए मिली हुई प्रिय वस्तुओं का, अथवा कन्या का, अथवा विद्या का, धन का, अन्य वस्त्र का तथा मान का, ज्ञान का दान करता है, जो दूसरों के लाभ में संतोष करता है दूसरों के हानि में करुणित होता है, जो स्वयं चोरी नहीं करता दूसरों की चोरी को न जानकर जो प्रसन्न नहीं होता, जो सदा दान का समर्थन करता है जो सदाचारी होकर सदाचार की प्रशंसा करता है उसे ही स्वेच्छित उत्कृष्ट भोग प्राप्त होते हैं।

संत ने हमें यह भी समझाया है कि अपनी कामना से पीड़ित होकर, द्वेष दुर्भाव रखकर, मोह से क्षुब्ध होकर लालच या किसी भय तथा आतंक से आकुल होकर मनुष्य अपनी बहुत बड़ी हानि करता है और दूसरों को भी हानि पहुँचाता है।

परम गुरु भगवान का उपदेश है कि सभी प्रकार के द्वन्द्वआत्मक दुःखों से मुक्त रहना चाहते हो तो राग द्वेष का त्याग करो। जो साधक इच्छा, कामना, आसक्ति, मोह का त्याग कर सकेगा वही बन्धन से छूटेगा और उसी के द्वारा दूसरों का हित हो सकेगा।

यह गुरु निर्णय है-प्राणायाम द्वारा राग का, धारणाओं द्वारा पाप का, प्रत्याहार द्वारा, विषयों के प्रति आकर्षण को ध्यान द्वारा, नास्तिकता का तथा क्रोध, लोभ, ईर्ष्या का नाश होता है।

प्रत्येक मनुष्य का किसी से सम्बन्ध है उसका अनायास ही ध्यान होता रहता है। लोभी, मोही, कामी को संबन्धित वस्तु व्यक्ति के ध्यान के लिये आसन नहीं लगाना पड़ता, भोगाभ्यासी जन विषय सुख के ध्यान द्वारा ही अन्त में बुद्धिनाश रूपी परिणाम की भूमिका में उतरकर विनाश का दर्शन करते हैं। योगाभ्यासी संयम के सहारे बुद्धियोगी होकर मुक्ति, भक्ति लाभ करते हैं। साधक को प्रथम सम्य का, धर्म का अथवा सदाचार का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, पुनः उस ज्ञान का ध्यान रखना चाहिये।

भगवान ने यह भी समझाया कि भक्ति चाहने वाले को सभी प्रकार की साँसारिक आसक्ति छोड़नी पड़ती है, अहंकार, घमंड, काम, क्रोधादि विकारों के रहते कोई ब्रह्म की एकता का अनुभव कर ही नहीं सकता, ब्रह्म की चर्चा भले ही करता रहे।

भोगी को देह की इन्द्रियों की, मन को बुद्धि की सर्वत्र आवश्यकता है किन्तु जो योगी भक्त होना चाहता है उसे तो सर्व संग त्याग की ही आवश्यकता है।

भगवान के मत से, जो किसी को अपना नहीं मानता कुछ भी अपना नहीं मानता ऐसा संग त्यागी होता है क्योंकि संग से ही भोग बन्धन होता है संग के त्याग से संयोग, वियोग का द्वन्द्व समाप्त होते ही योगानुभव होता है।

भगवान का तो यह खर्रा निर्णय है जो साधक संयोग भोग की कामना का, स्पृहा का, ममता का, अहंकार का त्याग नहीं कर सकता, वह शान्ति नहीं पाता। शान्त हुए बिना योग की सिद्धि सम्भव नहीं है।

यदि हम साधक स्वार्थ नहीं छोड़ पाते तो सेवा कैसे होगी ? लोभ नहीं छूटा तो दान कैसे होगा ? अपनापन

नहीं छूटता तो लोभ, मोह कैसे छूटेगा ? अभिमान नहीं छूटता तो विनम्रता कैसे आयेगी ? विनम्र साधु सन्तों से प्रीति-श्रद्धा नहीं होती तो अभिमान कैसे छूटेगा ? असत् संग नहीं छूटता तो सत्संग कैसे होगा ? आसक्ति, मोह का त्याग नहीं होता तो असत् संग कैसे छूटेगा ? सन्तों की संगति में यदि विचार न किया जायगा कि अपना क्या है, पर क्या है ? जब तक यह निर्णय न होगा, जड़ चेतन का विवेक न होगा तो आसक्ति मोह की निवृत्ति कैसे होगी ?

एक बात यह भी समझने योग्य है। चाहे कोई सालों व्रत रहे, फल, पत्ते खाकर, बीस-बीस वर्ष के फलाहारी को देखा कोई विशेष लाभ नहीं मिला, अभिमान अवश्य ही बढ़ा) चाहे कोई सदी में कपड़ा दोड़ दे, चाहे गर्मी की धूप में तपता रहे, चाहे गीता, रामायण, शास्त्र कण्ठस्थ कर ले, चाहे बहुत प्रसिद्ध महात्मा का शिष्य बन जाये चाहे सेठों, राजाओं, पदाधिकारियों तथा हजारों शिष्यों सेवकों का गुरु बन जाये; कुछ भी बन जाये परन्तु जब तक कोई किसी प्रकार की सम्पत्ति का अधिकारी, किसी वस्तु का या व्यक्ति का स्वामी बना हुआ है, प्रीति को कोई भाग कहीं अटका हुआ है, संसार में कुछ भी अपना प्रतीत होता है तब तक पूर्ण मुक्ति, पूर्ण भक्ति, पूर्ण शान्ति अथवा पूर्ण विश्राम एवं निर्वाण पद की प्राप्ति नहीं हो सकती। संसार में मान, वैभव, ऐश्वर्य, सम्पत्ति, अधिकार भले ही अधिकाधिक दीखता रहे, परन्तु परमागति का, शांति का, अच्युत पद का द्वार बन्द ही रहेगा। संसार से आशा तथा सम्बन्ध रखने वाला राग द्वेष के बन्धन से मुक्त हो ही नहीं सकता और राग द्वेष रहते कोई बड़े से बड़ा प्रसिद्ध महात्मा भी भक्त नहीं हो सकता।

स्वयं भगवान ने ही निर्णय किया है कि मुझे वही भक्त प्रिय है जो किसी से द्वेष नहीं करता, जो सबसे स्नेह रखता है, जो दूसरों के दुःखद दशा से करुणित होता है, जो किसी में ममता नहीं रखता, जो कुछ भी अपना न मान कर अहंकार रहित होता है।

भगवान को वही भक्त प्रिय है, जो मिली हुई वस्तु से, व्यक्तियों से सन्तुष्ट है, जो भगवान को नित्य प्राप्त समझता है, जिसका निश्चय दृढ़ है, जो चञ्चल नहीं है, जिसने मन को भगवान में ही लगा दिया है, जिसकी बुद्धि भगवान में ही स्थिर है, जो किसी को दुःख नहीं देता, किसी को अपने दुःख का कारण नहीं मानता, जो हर्ष लोक से उद्विग्न नहीं होता।

भगवान को वह भक्त प्रिय है जो अपने लिए भगवान के अतिरिक्त किसी अन्य का आश्रय नहीं लेता, जो पवित्र रहता है, प्रत्येक कार्य को विधिवत् पूरा करने में दक्ष है जो कुशल है जो हर दशा में सम रहता है, अशान्त नहीं होता, चञ्चल मति वाला नहीं रहता, निन्दास्तुति को कोई महत्त्व नहीं देता, जो भगवान का आश्रय लेकर भय चिन्ता से मुक्त रहता है।

भले ही कोई समाज की दृष्टि में बड़ा त्यागी, तपस्वी दानी, ज्ञानी, ध्यानी, प्रेमी-विद्वान, विरक्त भक्त माना जाता हो, यदि कहीं भी अहंकार छिपा है, ममता, आसक्ति बनी हुई है, कामनाओं का पूर्णतया त्याग नहीं कर सकता है तो सन्यासी, उदासी, वैरागी, हंस, परमहंस कहनाते हुए भी भगवान का प्रिय नहीं हो सकता। समाज, जाति, देश उसे भले ही त्यागी, वैरागी, सन्यासी, उदासी, परमहंस मान ले, पर भगवान के मत से त्याग, वैराग, सन्यास बाहर से नहीं प्रत्युत भीतर अन्तःकरण द्वारा होता है।

भगवान के मत से वही त्यागी, सन्यासी है जो अहंता, ममता, कामना, आसक्ति का त्याग करता है।

भगवान के मत से वही बुद्धिमान पण्डित है जो अपने मन की पूर्ति के लिए कोई संकल्प नहीं उठाता।

वही सुखी है जो शरीर छूटने के प्रथम ही काम क्रोध के वेग को जीत लेता है। भगवान के मत से केवल वही योगी है। जो अपनी अन्तरात्मा में ही सुखी सन्तुष्ट है। वही मुक्त है जिसमें इच्छा, भय, क्रोधादि विकार नहीं रह गए हैं, जो संग दोष से रहित है।

जो संकल्पों का त्याग नहीं कर सकता जिस पर संग का प्रभाव पड़ता रहता है वह योगी नहीं हो सकता, मुक्त नहीं हो सकता। मनुष्य भले ही उसे योगी मानकर पूजते रहें।

भगवान के मत से, वही पुरुष यथार्थदर्शी, सत्यदर्शी है, जो न रहने वाली विनाशी देह में अविनाशी तत्व को देखता है।

भगवान का निर्णय है कि जो कामी, क्रोधी, लोभी है वही प्राणी अभिमानी, घमंडी, धन मद् से युक्त, पाखण्डी, पर निन्दक भी है वही द्वेषी, सत्य विमुख क्रूरकर्मी नकर को जाते हैं।

काम, क्रोध, लोभ के त्याग को सद्गति, परमगति मिलती है। भगवान का ही यह कथन है कि शास्त्र विधियुक्त

यज्ञ द्वारा, तप और दान के द्वारा बुद्धिमान मानव पवित्र हो पाता है। जो दुर्बल सामर्थ्यहीन है अथवा जो यज्ञ, दान, तप, नहीं कर सकता, छल कपट रहित होकर जो साधक सर्व आशा छोड़कर भगवान का भोजन करता है वह शीघ्र ही पाप से मुक्त होकर धर्मात्मा हो जाता है।

भगवान का वचन है कि सभी प्रकार के आश्रयों को, अनेक धर्मावलम्बी को छोड़कर मेरी शरण में आता है उसे मैं सर्व पापों से मुक्त कर देता हूँ।

प्रेरणा

ओ प्रेमी प्रभु के गुण गा करके देखो,

प्रभु से ही प्रीति बढ़ करके देखो।

तुम जिस पर मोहित हो अरे यह नश्वर तन है,

किसी भी समय छुट सकता है जो दिखता धन है। 11।।

अपने को पहिचानो, यह सद्गुरु प्रवचन है,

अपने में नित्य सुलभ सतचिद् आनन्द घन है।।

अन्तर में आसन जमा करके देखो,

ओ प्रेमी प्रभु के गुण गा करके देखो। 12।।

जग में जो मिलता है साथ नहीं रहता है,

सुख स्वार्थ बिना यहाँ कौन किसे चाहता है।

जिससे तू मिल करके मैं, मेरा कहता है,

यही गन्धि माया की, जिससे दुःख सहता है।।

ममता, अहंता मिटा करके देखो,

ओ प्रेमी हरि के गुण गा करके देखो। 13।।

यह दुःख-सुख हैं सपने जागो औरें खोलो,

आत्म ज्ञान प्राप्त करो इधर-उधर मत डोलो।

जड़ चेतन भिन्न-भिन्न एक भाव मत तोलो,

परम शान्ति चाहो तो निज में ही स्थिर होलो।।

अपने में विश्राम पा करके देखो,

ओ प्रेमी प्रभु के गुण गा करके देखो। 14।।

जो कुछ भी मिला तुझे साथ नहीं जायेगा।

वासना रही तो लौट-लौट आयेगा।।

जग के इन भोगों में तृप्ति नहीं पायेगा

शक्ति समय खोयेगा धोरखा ही खायेगा।।

उधर से इधर अब आकर के देखो,

ओ प्रेमी प्रभु के गुण गा करके देखो। 15।।

अभिमानि को दीन होना पड़ेगा यहाँ

कामी को बल बुद्धि खोना पड़ेगा यहाँ।।

लोभी को किसी दिन रोना पड़ेगा यहाँ

कर्मों का कठिन बोझा ढोना पड़ेगा यहाँ।।

उचित नहीं तुम भी जा यही करके देखो,

ओ प्रेमी प्रभु के गुण गा करके देखो। 16।।

मैं प्रभु का प्रभु मेरे-ऐसा अभिमान रहे,

मिला हुआ अपना नहीं है यह ज्ञान रहे।

प्रभु सब में सब प्रभु में ऐसा दृढ़ ध्यान रहे,

कण-कण में प्रभु की ही सत्ता का भान रहे।।

पथिक यही सुरति मति बना कर करके देखो
ओ प्रेमी प्रभु के गुन गा करके देखा ।। 7 ।।

सिद्धि के अनेक प्रकार

जीवात्मा में जब तक किसी प्रकार की अपूर्णता है- कहीं भी कोई कमी प्रतीत होती है जब तक कुछ भी प्राप्त करने की अभिलाषा है, तब तक वह साधक कोटि में ही माना जाता है- सिद्ध नहीं।

अभिलाषा का पूर्ण होना, इच्छा, कामना, वासना से मुक्त हो जाना, अर्थात् पूर्णता प्राप्त होना ही साधक की वास्तविक सिद्धि है।

शास्त्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार की साधना का वर्णन है तदनुसार नाना प्रकार की सिद्धियों का मिलना भी प्रसिद्ध ही है। अष्ट सिद्धि नौ निधि की बात हम सभी लोग प्रातः पढ़ते आये हैं।

साधना करते हुए साधक में जब मन एकाग्र होने लगता है, वृत्ति शान्त होने लगती है, वहीं से छोटी-छोटी चमत्कारिक अनुभूतियाँ आने लगती हैं। प्रायः साधक का अहंकार छोटी-छोटी सिद्धियों में ही इतना अकड़ जाता है कि मान पाने के लिए दूसरों से अपनी सिद्धि की चर्चा करता है वहीं से उसकी प्रगति रुक जाती है।

एकाग्र में रहकर भगवान्नाम जप से, आत्म चिन्तन से कभी-कभी आगे आने वाली घटनाओं का आभास मिल जाता है। कभी-कभी अलौकिक दर्शन होते हैं। अपने सबन्धित जनो का भविष्य दीख जाता है। दूसरों के मन की बात विदित हो जाती है। किसी-किसी साधक में भूख प्यास सहने की शक्ति रूपी सिद्धि आ जाती है। आज भी दो तीन साधक ऐसे हैं जो अन्न जल कुछ न लेकर चलते फिरते हैं, शरीर में बल है। मैंने एक माता करे देखा है एक साधु के दर्शन हुए हैं जो अन्न, जल, फल कुछ खाते-पीते नहीं देखे जाते, उन्हें बिना खाये पिये वर्षों बीत गये।

किसी में दूर श्रवण, की दूर दर्शन, की सिद्धि आ जाती है। स्वल्प समय में सुदूर स्थान में पहुँच जाना, दूसरा रूप धारण कर लेना दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाना, स्वेच्छा से देह छोड़ना, देवताओं की क्रीड़ा देख सकना, संकल्प की वस्तु तत्काल प्राप्त करना, गति में कहीं बाधा न पड़ना आदि सिद्धियाँ भी सुनी जाती हैं।

किसी प्रकार की सिद्धि के बदले में जब मान, धन या सुखोपभोग ले लिया जाता है वहीं से सिद्धियाँ क्षीण हो जाती हैं।

गुरु आज्ञा तो यही है कि जिस सुख का सिद्धि का तुम भोग करते हो उसके द्वारा दूसरों की सेवा करते रहो। सुखोपभोग से सञ्चित पुण्य क्षीण होते हैं और जिस भोग से दूसरों को दुख होता है तब पाप बढ़ते हैं।

तन, मन, धन दे कीजिये निति दिन पर उपकार।

यही सार नर देह में बाद विवाद बिसार ।।

इस कलिकाल में किसी साधक को जितने अधिक धनी मानी पदाधिकारी, शिष्य सेवक मिल जाये उतना बड़ा सिद्धि है।

अच्छे स्वभाव के सभ्य शिक्षित शिष्य शिष्यायाओं का सेवा के लिए उपस्थित रहना भी आज की सिद्धि है।

बहुत स्वल्प समय में साधक की प्रतिष्ठा बढ़ जाना साधक के संकल्प मात्र से बड़े आश्रम का मन्दिर मठ का निर्माण हो जाना भी सिद्धि है।

गरीबों दुखियों की सेवा का संकल्प उठाते ही हजारों रुपये एकत्रित हो जाना भी क्षुद्र की सिद्धि है।

साधक की जिस सिद्धियों चमत्कारों को देख सुनकर सांसारिक मनुष्य प्रसन्न होते हैं भगवान की दृष्टि से वह साधक भोगी ही है योगी नहीं है।

जिस साधक में किसी प्रकार के भोग की अथवा धन की एवं मान प्रतिष्ठा की कामना है, जो अपने अहंकार को, अभिमान को अज्ञान को, मोह-लोभ को, नहीं देख पाता वह साधक भगवान के मतानुसार बुद्धिमान विवेकी भी नहीं है।

भगवान के मत से वही बुद्धिमान साधक है जो अहंकार रहित होकर कर्म करता है, जिसके कर्मों के साथ कोई कामना नहीं है, जिसका अपना कोई संकल्प नहीं है, ऐसे साधक को ज्ञानी-पुरुष भी पण्डित कहते हैं।

भगवान के मत से वही साधक ज्ञान-युक्त है, जो अभिमान रहित है, जिसमें दम्भ का अभाव है, जो अपने सुख के लिये किसी को दुःख नहीं देता, जिसमें क्षमा का बल है जो मन वाणी से सरल है जो श्रद्धा सहित आचार्य

की, गुरु के सेवा में तत्पर है, जो बाहर से, भीतर से, पवित्र है, जिसका अन्तःकरण शान्त है, जो शरीर को, इंद्रियों को, मन को वश में रखता है, जिसके भीतर लोक-परलोक के भोगों में आसक्ति नहीं रह गई है, जो पूर्ण विरागी होकर जन्म-मृत्यु, बुढ़पा, रोग आदि में घोर दुःख को देखता है।

भगवान के मत से वही साधक ज्ञानसिद्ध है जो मरे हुए सम्बन्धियों में राग नहीं रखता है, जिसके मन में किसी के प्रति ममता नहीं है, जो प्रिय-अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही सम रहता है, जो अनुकूल से हर्षित नहीं होता, प्रतिकूल से शोकित नहीं होता।

वही साधक सिद्ध-ज्ञानी है जो परमेश्वर की भक्ति में व्यभिचार नहीं घुसने देता अर्थात् परमेश्वर के अतिरिक्त जो अन्य किसी को नहीं चाहता, कुछ भी नहीं चाहता, जो एकांत सेवी होता है, विषयी जनों के संसर्ग में नहीं उतरता। जो आत्मा-परमात्मा के अतिरिक्त कुछ जानना ही नहीं चाहता, जो सर्वत्र तत्त्व को ही देखता है। जिस साधक में ऐसा ज्ञान नहीं हो वही अज्ञानी है। (गीता अ०-१३-७ से ११)

भगवान के मत से ज्ञानी मुनिजन ही संसार से मुक्त होकर परम सिद्धि प्राप्त करते हैं।

जो अपने तन को, इन्द्रियों को, मन को, बुद्धि को परमानन्द परमात्मा के योग के लिये साध ले, वही बलवान विजयी साधक है। भगवान के मत से अन्तःकरण का शुद्ध होना साधन की सिद्धि है।

जो सर्वत्र आसक्ति रहित बुद्धि वाला है जो स्पृष्ट रहित है, जिसने अन्तःकरण वश में कर लिया है, वह ज्ञान योग के द्वारा नैष्कर्म सिद्धि को प्राप्त होता है। अर्थात् क्रिया रहित परमात्मा की प्राप्ति रूपी परम सिद्धि उसे मिल जाती है। यह भगवान के मत से परम सिद्धि है। (गीता)

भगवान ने यह भी निर्णय दिया है कि जो मन की इच्छानुसार शास्त्र-विधि को छोड़कर चलता है उसे सिद्धि नहीं मिलती। (गीता १५-२३)

सर्वेषु शश्वत्तनु भृत्स्ववस्थितं

यथा रमात्मानमश्रीष्ट मीश्वरम्।

वेदेयगीतं च न शृण्वते तुधा

मनोरथानां प्रवदन्ति वार्तया ।।

वेदों न इस बात को बार-बार दुहराया है कि परमेश्वर आकाश के समान नित्य निरन्तर समस्त शरीरधारियों में स्थित हैं। वे ही आत्मा रूप में सबकी पूर्ति करने वाले प्रियतम हैं, परन्तु अज्ञानी इस वेद गीत को सुनते ही नहीं, प्रत्युत् बड़े-बड़े मनोरथों की वार्ता को, परस्पर कहते-सुनते हुए सन्तुष्ट से रहते हैं।

भगवान के मत से वही साधक, सिद्धि है जो मान एवं मोह से रहित होकर आसक्तियों का त्यागी है, जो परमात्मा के स्वरूप में जिसकी स्थिति हो चुकी है, जिसमें कोई कामना नहीं रह गई है, जो दुःख सुखादि द्वन्द्वों से मुक्त हो चुका है, वही ज्ञानी सिद्धि-साधक परम पद को प्राप्त होता है। (गीता १५-५)

भगवान के मतानुसार साधक की तभी सर्वोपरि सिद्धि समझनी चाहिये जब कर्म करते हुए कर्म-फल का बन्धन न रह जाये जब साधक आसक्ति रहित हो जाता है कोई भी स्पृहा नहीं रह जाती, अन्तःकरण वश में हो जाता है तभी परमात्मा की प्राप्ति रूप परम सिद्धि सुलभ होती है।

साधक की सिद्धि के विषय में जब हम भगवान से प्रश्न करते हैं तो यह उत्तर स्मरण रखना चाहिए कि साधक के द्वारा अन्तःकरण रूपी साधन का शुद्ध होना ही कल्याण चाहने वाले साधक की आवश्यक सिद्धि है।

भगवान के मत से जिसकी बुद्धि शुद्ध है जो पवित्र एकांत देश में रहने वाला है जो निर्वाह के लिये स्वल्प भोजन करता है, जो राग-द्वेष से रहित विरागी है ध्यान-योग में तत्पर रह कर अहंकार, बल, घमण्ड, काम-क्रोध और संग्रह का त्याग कर, ममता शून्य शान्त अन्तःकरण से ब्रह्म की एकात्मता का अनुभव करता है, जो सदा प्रसन्न रहता है, जो शोक से, आकांक्षा से रहित हो सब प्राणियों में सम भाव रखता है वही भक्ति प्राप्त करता है। (गीता १८-५२ से ५४)

काम-क्रोध, लोभ-अभिमान, तृष्णा, राग-द्वेष, मद्मत्सर के रहते भक्ति सुलभ नहीं हो सकती। जिसमें यह दोष रहते हैं: जप, पूजन, व्रत, तप, तीर्थादि कुछ भी साधना करता रहे फिर भी वह भगवान का प्रेमी नहीं है।

जो प्रेमी होगा वह काम, क्रोध, लोभादि दोषों से रहित होगा। इन दोषों का त्याग उसी के लिये सुगम है जो भगवान के प्रति प्रीति रखता है।

भगवान स्वयं ही कर रहे हैं कि तू मुझमें मन ही मन लगा, मेरा ही भक्त बन, सभी शुभ कर्मों द्वारा) मेरा ही पूजन

कर, सर्वत्र मेरा ऐश्वर्य मानकर) मुझे ही नमस्कार कर, तो मुझे ही प्राप्त होगा, यह मेरी प्रतिज्ञा है। पी0 18-65) जो भगवान को चाहता है भगवान से कुछ नहीं चाहता है वही राग द्वेषादि विकारों से रहित भगवान का भक्त सिद्ध होता है।

स्वरूप के ज्ञान से, परमात्मा के ज्ञान से, आसक्ति मिटती है। मिले हुए को अपना न मानने से आसक्ति मिटती है। साधक को सन्त यही संमति देते हैं कि सेवा करो दोनों का अर्थात् अहंता, ममता, आसक्ति, कामना का त्याग करो जो कोई दुःख दे उसे क्षमा करो।

सेवा तभी कर सकोगे जब सभी के हित की भावना प्रबल होगी। त्याग तभी सुगम होगा जब संसार के स्वरूप का यथोचित ज्ञान होगा।

क्षमा करना उसे ही सुगम होगा, जब किसी अन्य को दुःख का कारण न समझकर अपनी ही भूल-भ्रंति अज्ञानता को जानेगा।

अहिंसावृत्त, इन्द्रिय संयम, जीव दया, क्षमा, शम दम ध्यान सत्य-दर्शन यही सब साधक की सिद्धि में सहायक होते हैं, इनकी कमी ही साधक की सिद्धि में बाधक है।

जिस साधक में सन्तोष नहीं हो वह दरिद्र है। जो साधक इन्द्रियों को वश में नहीं कर पाता, वह कृपण है जो किसी वस्तु या व्यक्ति में आसक्ति है, वही साधक असमर्थ है, पराधीन है।

साधक की साधुता केवल जप से, सन्ध्या से पूजा-पाठ, कीर्तन वेशभूषा धारण करने मात्र से पूरी नहीं होती। वह तो सत्य के आश्रय से, दया, क्षमा, आदि सद्गुणों से, श्रम से, सेवा से, सद्ब्यवहार से पूरी होती है।

साधक की साधुता निन्दा, घृणा, कलह, क्रोध के त्याग से पूरी होती है।

एकमात्र प्रभु प्रीति, कर्तव्य परायणता, तत्व का बोध अखण्ड प्रशान्ता, स्थिर बुद्धि, अनुकूल-प्रतिकूल के प्रति यही सब साधक की सिद्धि प्रदायनी भूमिका है आशा, भय, लोभ स्नेह आदि के त्याग से साधक मुक्त होता है।

भोग ऐश्वर्य में आसक्ति रहते साधक सत्य परमात्मा का प्रेमी नहीं हो सकता।

हम साधकों को अपने भीतर देखना चाहिये कि जब राग द्वेष ईर्ष्या, तृष्णा, क्रोध, मद, मत्सर, चिन्ता, मोह, लोभ मद अहंकार प्रबल होता है, तब आसुरी स्वभाव की प्रधानता है। आसुरी स्वभाव में वृथा आशा, व्यर्थ कर्म, व्यर्थ चिन्ता, व्यर्थ विचारों के पीछे समय शक्ति का दुरुप्रयोग होता है। जो महात्मा जन हैं, वे ही देवी प्रकृति का आश्रय लेकर स्थिर बुद्धि के द्वारा परम तत्व परमात्मा को जानकर, नित्य योगी होते हैं वे परमात्मा को ही निरन्तर भजते हैं।

भगवान ने ऐसे सिद्ध महात्माओं के यही लक्षण बताये हैं कि वे निरन्तर परमेश्वर की ही सत्ता, महता, व्यापकता का अनुभव करते हुये परमेश्वर के ही गुणों का कीर्तन करते हैं परमेश्वर की ही विभूतियों का दर्शन करते हुये सर्वत्र नमस्कार करते हैं वे समग्र प्राप्ति से परमेश्वर के ही ध्यान में तृप्त संतुष्ट रहते हैं।

‘उमा जो राम चरण रत, विगत काम मद क्रोध।

निज प्रभु मय देखहिं जगत किनसन करहिं विरोध।।

जो वास्तव में भगवान का प्रेमी हैं वे ही राग द्वेष क्रोध से रहित होते हैं जो विकार सहित होते हैं वे साधक अभी सिद्धावस्था से दूर ही हैं।

साधक की जो मनोवृत्तियाँ विषयाकार बन ही रही हैं देहाकार बन रही हैं, सुखमय, दुःखमय बन रही हैं जो विविध प्रपञ्चाकार बन रही हैं, वही जब भजन करते करते भगवदाकार बन जायें, यही भजन की सिद्धि है। आत्मा का यह चिन्तन करते-करते जब चित्त चिन्मय बन जाये, यही ध्यानी की सिद्धि है साधक की वृत्ति केवल ज्ञान मय स्वरूपाकार बन जाये यही ज्ञान की सिद्धि है।

आत्मा का यह चिन्तन करते-करते जब चित्त चिन्मय बन जाये, यही ध्यानी की सिद्धि है साधक की वृत्ति केवल ज्ञान मय स्वरूपाकार बन जाये यही ज्ञान की सिद्धि है।

साधक की प्रीति केवल प्रियतम प्रभुमय हो जाये यही परम योगी की सिद्धि है।

साधक अपनी सतोगुणी, रजोगुणी अथवा तमोगुणी प्रकृति के अनुसार त्रिगुणमयी सिद्धियों की ओर आकर्षित होता है।

परमाराध्य भगवान का निर्णय है।

जितेन्द्रिय दान्तरसय जितश्चात्मानो मुनेः

मद्धारण धारयतः का सा सिद्धि सुदुर्लभा ।

जिसने पाँच कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों को शम दम द्वारा जीत लिया है एवं जिसने मेरे चिंतन से मन को वश में कर लिया है। उसके लिये कौन की सिद्धि दुर्लभ है ?

साधक का संकल्प पूर्ण हो जाये, साधक की इच्छा कामना पूरी हो जाये, साधक की आवश्यकता पूरी हो जाये साधक अभिलाषा पूरी जाये यही साधक की सिद्धि है।

इच्छाओं के कामनाओं संकल्पों की पूर्ति होना, तुच्छ सिद्धि है। आवश्यकता की अनायास पूर्ति होना, मध्यम काटि के साधक की सिद्धि है। अभिलाषा की पूर्ति होना यह उत्तम कोटि के साधक की सिद्धि है।

सभी प्रकार की सिद्धि मन की एकाग्रता पर चित्त के शान्त होने पर बुद्धि के स्थिर होने पर निर्भर है।

किसी का अन्तः करण हरि गुण कीर्तन से शुद्ध एवं शान्त होता है, किसी का जप से शान्त होता है, किसी के अन्तः करण में मूर्ति पूजा से ही एकाग्रता आती है, कोई साधक सूक्ष्म शरीर के चक्रों में जमा कर सुरति सिद्धि प्राप्त करते हैं, कोई साधक भीतरी नाद में मन लगाकर एकाग्रता प्राप्त करते हैं।

जब तक मन, चित्त, बुद्धि में एकाग्रता, स्थिरता न हो, तब सभी प्रकार की साधना में श्रम ही श्रम है, अभिमान की ही प्रधानता रहती है।

अन्तः करण में एकाग्रता, एकाग्रता, समता आते ही साधना की सफलता है। एकाग्रता ही सिद्धों का द्वार खोलती है।

मैं भी प्रायः पूछ करता था कि ध्यान किसका करना चाहिये ? साधना पथ में चलते हुए अब तो मुझे यह ज्ञान हुआ कि ध्यानाभ्यास में बैठते हुए, यह देखना चाहिये कि ध्यान किसका हो रहा है, यह देखते रहना चाहिए।

बिना ध्यान किये जिसका ध्यान स्वतः हो रहा हो उससे सम्बन्ध तोड़ना चाहिए।

हम उस परमात्मा का ध्यान करना चाहते हैं जो हमसे कभी भिन्न नहीं है, जब हम ध्यान करने का प्रयत्न करते हैं तब अनायास ही हमारे समक्ष जो कुछ भी ध्यान किये बिना ही आता है, वही परमात्मा के ओर हमारे मध्य ये आवरण है क्योंकि उससे हमारा या तो राग है या फिर द्वेष है। इसीलिये सब्त मत है कि राग द्वेष के अन्त होने पर ही ध्यानयोग की सिद्धि मिलती है।

साधक की उदारता और विशालता

अनन्त की इस सृष्टि में मानव समाज के अन्तर्गत चार प्रकार के अन्तः करण वाले व्यक्ति दीख पते हैं-कृपण, अनुदार, उदार और विशाल। इन्हीं को विद्वानों ने अधम, निकृष्ट, मध्यम और उत्तम शब्दों से सम्बोधित किया है। मानव-आकृति में कुछ ऐसे भी राक्षसी और पशु स्वभाव के व्यक्ति देखे जाते हैं जो अकारण ही दूसरों को कष्ट देते हैं, हानि पहुँचाते रहते हैं, यहाँ उनकी चर्चा न कर हमें परमेश्वर की उन विभूतियों का मनन करना है, जिनके व्यवहार में उदारता और विशालता का दर्शन मिलना है। उदार मति वाले मानव स्वाधिकारगत् सुन्दर, पवित्र, अनूठी और प्रिय वस्तु का सुपात्र अथवा अभाव-पीड़ित को दान देते हैं, उनके हृदय में उदारता के साथ जब विशालता आती है, तब सुपात्र को दान देने, दीन दुखी की सहायता करने के साथ ही साथ ये कुपात्र, पतित और दलित को यथा स्थान आश्रय भी देते हैं। अनुदार मनुष्य मिली हुई वस्तु, योग्यता तथा सामर्थ्य का भोग करते हैं। कृपण व्यक्ति तो भाग भी नहीं कर पाते, वे तो प्राप्त वस्तु योग्यता और सामर्थ्य के अभिमानी बने रहते हैं, तथा धन संचय के लोभी होते हैं। उदार मतिवाले मानव प्राप्त वस्तु योग्यता और सामर्थ्य द्वारा दूसरों का हित करने में तत्पर रहते हैं, किसी की निन्दा, अनादर या अपमान करना तथा कठोर वाक्य कहना उन्हें महान दुःखदाई दीखता है। निन्दा करने वालों की निन्दा न करना, बुराई करने वाले की बुराई न करना, अपने प्रति अपराध करने वाले को क्षमा कर देना, किसी की निन्दा अथवा दोष-चर्चा सुनकर मौन रहना, उदार मतिवाले सज्जन का सहज स्वभाव होता है।

उदारता के साथ हृदय में विशालता आने पर मानवों में दिव्यता आ जाती है। वह बुराई करने वालों की भी भलाई करता है, निन्दकों में भी गुण-दर्शन करता है, वह दानी-निराभमानी होने के साथ ही सभी प्राणियों में एक सत्-चित्-स्वरूप आत्मा का अनुभव करते हुए कहीं भी घृणा, द्वेष और हिंसा न करते हुए, सभी के प्रति दया कृपण, मनुष्य पशु के समान लाभादि पाशों से बँधा रहता है, अनुदार मनुष्य आसुरी प्रकृति से दबा रहता है। उदार मति वाले में मानवता का दर्शन मिलता है तथा विशाल हृदय वाला पुरुष दिव्य महात्मा पद प्राप्त करता है। कृपण अन्धा होता है, वस्तु पकड़ने के अतिरिक्त उसके द्वारा जो कर्तव्य है, वह उसे नहीं दीखता। अनुदान

व्यक्ति मन्द दृष्टि वाला होता है, उसे भोगजनित सुख प्रतीत होता है, पर उसका परिणाम नहीं दीखता उदार मतिवाला पुरुष दूरदर्शी दीर्घदर्शी तथा परिणामदर्शी होता है तथा विशाल हृदय वाला महामानव सत्यदर्शी-आत्मदर्शी होता है। उसकी बुद्धि आत्मा में स्थिर होती है, उसकी प्रीति सब प्रकार परमात्मा से ही होती है। कृपण व्यक्ति विशेष रूप से लोभी, मोही होता है, उदार मानव संयमी त्यागी तथा देवी सम्पत्तियुक्त दानी और विवेकी होता है और ध्यानी होता है। भोगी रहते कोई उदार नहीं हो पाता। धन आदि वस्तुओं के लोभ ने उनकी दासता विलासिता और लोभी की वृद्धि होती है तथा व्यक्तियों के संयोग-भोग से मोह-ममता तथा आशक्ति दूढ़ होती है। अधिकतर पदाधिकारियों की सीमा में मान के भोग से अभिमान अहंकार बढ़ता जाता है, किसी प्रकार के भोग में आसक्त प्राणी को प्रायः ज्ञान नहीं होता।

धन, भोग और मानव की तृष्णा अच्छे-अच्छे बुद्धिमानों और विद्वानों को दरिद्र बनाये रखती है। धन की तृष्णा में मनुष्य अंधा बना रहता है, उसे धन के अतिरिक्त धर्म और ईश्वर का ज्ञान नहीं रहता; इसी तरह पदाधिकार के मद में, मान की तृष्णा अहंकार को इतना स्थूल बना देती है, उसमें इतनी जड़ता आ जाती है कि वह अपने आपको पदाधिकार के अतिरिक्त कहीं झुंझ नहीं पाता, नमनशीलता-कोमलता रह ही नहीं जाती, अनुदार भोगी में उदारता, सहीष्णता, गम्भीरता, सात्विक प्रसन्नता, निर्भयता, निश्चितता तथा क्षमाशीलता और प्रीति आदि देवी गुणों का आविर्भाव नहीं होता। कुसंग एवं कुसंस्कार ही हमें मोही, लोभी, अभिमानी तथा कामी बनाते हैं। सुसंग तथा सुसंस्कार के प्रभाव से हम उदार, निराभिमानी, निष्काम, प्रेमी तथा विशाल हृदय वाले बन सकते हैं।

जितने अंश में हममें मानवता का विकास हुआ है, उतने अंश में हम साधक हैं। साधक की सिद्धि प्राप्त करता है। आत्मनिरीक्षण करने पर यह दीखता है कि हम साधकों के जीवन में प्रायः ऐसे अवसर आते रहते हैं, जिनके सदुपयोग से हम अपने आप में आसुरी स्वभाव का दमन करके, दिव्यता धारण कर सकते हैं; पर अनुदारता के कारण इस सुन्दर निर्माण से हम वञ्चित होते आ रहे हैं। अनुदार होने के कारण ही हम दूसरों के तिल मात्र दोष को ताड़ बनाकर देखते-दिरवाते हैं, दूसरों की निन्दा करते मन नहीं भरता; जिससे द्वेष हो जाता है उसकी अपकीर्ति, अपमान की कल्पना मात्र से हमारे मन में बहुत संतोष होता है। अनुदार होने के कारण ही हम साधक कहलाते हुए सेवा, त्याग, प्रेम की साधना से विमुख रहकर स्वार्थ, राग और द्वेष की पुष्टि करते आ रहे हैं अनुदार होने के कारण ही हमारे द्वारा अनेकों दान के अवसर खो दिये गये। जहाँ क्षमा करना था, वहाँ क्रोध करते हुए हम अपराधी बन गये; जहाँ सहन करना आवश्यक था, वहाँ हम उत्तेजित होकर जो न कहना था वह कहते रहे; जहाँ प्रसन्न और शान्त रहकर अपने द्वारा प्रसन्नता और शान्ति का वातावरण बना सकते थे, वहाँ खिन्न तथा क्षुब्ध और अशान्त होकर अपने निकटवर्तियों को अपनी विषाक्त भावनाओं से हम प्रभावित करते रहे।

गुरु-विवेक द्वारा यह समझ में आया कि कृपण होना तथा अनुदार होना, आसुरी प्रकृति को पुष्ट करना है और उदारमति तथा विशाल हृदय वाला होना, जीवन को ईश्वरमय अर्थात् दिव्य बना लेना है। संसार में ऐसा कौन मनुष्य है, जो दूसरों से अपने लिए उदारता और विशालता की अपेक्षा न रखता हो। जब हम किसी प्रकार के अभाव से पीड़ित होते हैं, तब उसकी पूर्ति के लिए किसी की उदारता पर ही अवलम्बित होते हैं; जब हमसे कोई पाप या अपराध बन जाता है, तब दण्ड न चाहते हुए उदारतापूर्वक क्षमा की ही याचना करते हैं; जब कभी हम सभी ओर से तिरस्कृत होते हैं, तब हमारी आँखें किसी उदार और विशाल हृदय की खोज में दौड़ने लगती हैं। यद्यपि कोई भी बुद्धिमान् मनुष्य अपने आप में उदारता और विशालता लाने के लिए स्वतन्त्र है तथापि प्रत्येक को इन ईश्वरीय गुणों की महत्ता का ज्ञान नहीं होता है। देवी उदारता तथा विशालता का दर्शन, उस पतिव्रता सती नारी में मिलता है, जिसकी बुद्धि में प्रेमपात्र पतिदेव के लिए सर्वस्व का दान ही परम कर्तव्य दीखता है और जिसके हृदय में पति के पतित होने पर भी घृणा, द्वेषादि विकारों के लिए स्थान नहीं मिलता, इस देवी उदारता का तथा विशालता का परिचय किसी स्वाभाविक अथवा देश भक्त सेवक में भी मिलता है। जिसने सेव्य की सेवा करते हुए अपना सब कुछ दे डाला है और किसी प्रकार की प्रतिकूलता तथा अपवाद के आने पर सेवा से मुख नहीं मोड़ है। कोई भी मानव परमेश्वर के इन दिव्य गुण-उदारता और विशालता की उपासना बुद्धि और हृदय से करते हुए महात्मा पद प्राप्त कर सकता है। कोई भी सद्गृहस्थ इनकी उपासना से सद्गति प्राप्त कर सकता है। कोई भी साधक इन्हें धारण कर सिद्ध हो सकता है। कोई भी नेता केवल उदार तथा विशाल हृदय के द्वारा ही जन-जन पर नेतृत्व स्थापित करते हुए सेवा के कठोर धर्म में पूर्णत्व प्राप्त कर सकता है। किसी भी मनुष्य को परस्पर किसी भी सम्बन्ध से उतने ही अंश में तृप्ति मिलती है, उतने ही अंश में सुख मिलता है जितने अंश

में उदारता और विशालता का सुयोग होता है।

किसी भी अनित्य वस्तु से लोग तथा किसी व्यक्ति से मोह और अधिकार का अभिमान तथा रोग द्वेष के रहते उदारता अथवा विशालता पूर्ण नहीं हो पाती। परापेक्षी सुखों के प्रति आशक्ति, परिदोष-दर्शन, असहिष्णुता, कठोरता, अदूरदर्शी बुद्धि, विवेक की कमी, असत्संग, तृष्णा, भय तथा क्रोध आदि विकार जब तक स्थान पाते रहते हैं तब तक उदारता और विशालता पूर्ण नहीं होती। पाप से बोझिल मनुष्य हृदय को उदार और विशाल नहीं बना पाते। पुण्यों के संचित होने पर उदारता तथा भगवत्कृपा से विशालता आती है। सात्विक श्रद्धा और सरल विश्वास से बुद्धि तथा हृदय शुद्ध होता है। शुद्ध के स्मरण, चिन्तन और ध्यान से शुद्धि आती है। हमें शुद्ध-पवित्र का ही स्मरण, चिन्तन और ध्यान करना चाहिए।

समाप्त

सावधान

ओ आने वालों इतना समझ लो, इस जग से तुमको जाना ही होगा।
यदि रह गई है कुछ वासनायें, उनके लिये फिर आना ही होगा।।
जब तक किसी पर अधिकार रख कर जितना अधिक सुख तुम भोगते हो
मानो न मानो जीवन में अपने पुण्यों, की पूँजी गँवाना ही होगा।।
दानाधिकारी बनकर किसी से, श्रद्धा के बाहर यदि धन लिया है।
तुम ले के देना भूलो भले ही, ऋण लिया वह चुकाना ही होगा।।
जिससे किसी को दुख हो रहा हो, ऐसा असत कर्म होने न पाये।
सुख के लिये जो दुख दे किसी को, उसको कभी दुख उठाना होगा।।
तुम दूसरों को वह देते रहना, जो दूसरों से स्वयं चहाते हो।
जैसा भी दोगे वैसा प्रकृति से, बहुगुणा तुमको पाना ही होगा।।
कुछ जानना है अपने को जानो, मानना है तो प्रभु को ही मानो
करना है तो सबकी सेवा करो तुम, जीवन किसी विधि बिताना ही होगा
छोड़े अहंता ममता जगत की, परमात्मा से ही प्रीति जोड़े।
देखो पथिक तुम जिनकी शरण हो, उन पर विश्वास लाना होगा।।